# “MAA” OMWATI COLLEGE OF EDUCATION HASSANPUR (PALWAL)

AFFILIATED CRS UNIVERSITY, JIND

B.ED – 1ST YEAR (2021-22)

NOTES PAPER- IV & V

HEALTH PHYSICAL AND YOGA EDUCATION

MAA OMWATI EDUCATION TRUST

DELHI

E-mail: moce.principal@maaomwati.com

**प्रश्न-1. स्वास्थ्य के सम्प्रत्यय को परिभाषित कीजिएं। शारीरिक शिक्षा से आप क्या समझते हैं? विस्तार से चर्चा करें।**

**Describe the concept of health. What do you understand by Health Education? Discuss in detail.**

**उत्तर - स्वास्थ्य की धारणा (Concept of Health)**

किसी भी राष्ट्र की प्रगति का स्तर उस राष्ट्र के नागरिकों के स्वास्थ्य पर निर्भर करता है। आधुनिक युग में वही राष्ट्र महान बन सकता है तथा विभिन्न क्षेत्रों में उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर पहुंच सकता हैं, जिस राष्ट्र के नागरिक पूर्ण रूप से स्वस्थ हों। स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा के इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं कि जिन देशों के नागरिक स्वास्थ्य के प्रति काफी सचेत एवं सजग हैं उन देशों ने जीवन के अनेक क्षेत्रों में अद्भुत प्रगति की है। शायद इसीलिएं इमर्सन **(Emerson)** ने कहा है "स्वास्थ्य ही प्रथम धन है" **(Health is the first wealth)** । लेकिन हमारे लिए यह एक दुर्भाग्य की बात है कि हमने अभी तक स्वास्थ्य के महत्व को भली- भांति नहीं समझा हैं, जिसके परिणामस्वरूप व्यक्तियों के स्वास्थ्य पर किए जाने वाले खर्च की दृष्टि से विश्व में हमारा 113वाँ स्थान है। वास्तव में, हम स्वास्थ्य के बारे में केवल बातें ही करना जानते हैं, लेकिन स्वास्थ्य के अर्थ को पूर्ण रूप से नहीं समझते। कुछ व्यक्ति बीमारियों से दूर रहने को ही स्वास्थ्य मानते हैं। कुछ व्यक्ति स्वास्थ्य को शरीर की कार्य करने की क्षमता समझते हैं तथा कुछ व्यक्ति शरीर के सुन्दर होने को ही स्वास्थ्य समझते हैं। स्वास्थ्य को पूर्ण रूप से समझने के लिए निम्न परिभाषाओं महत्वपूर्ण हो सकती है-

**जे. एफ. विलयम के अनुसार,** "स्वास्थ्य जीवन का वह गुण है जिससे व्यक्ति दीर्घायु होकर उत्तम सेवाएँ प्रदान करता है।" **(Health is the** quality of life that enables the individual to live most and serve best. J.F.William)

**बेकन के अनुसार,** " स्वस्थ शरीर आत्मा का अतिथि- भवन और दुर्बल तथा रूग्ण शरीर आत्मा कर कारागृह है।" **(Healthy** body is guest- house for the soul and den for the weak and diseased. - Bacon.)

**वोल्टीमर व ऐसलिंगर के अनुसार,** " स्वास्थ्य एक ऐसी दशा का नाम हैं, जिसमें व्यक्ति अपनी शारीरिक, भावनात्मक और बुद्धि सम्बन्धी शक्ति को इक्ट्ठा करके एक आदर्श जीवन बिताने के लिए इस शक्ति का प्रयोग कर सकें।"

(Health is considered as that condition - mental and physical and emotional in which the individual is functionally well adjusted internally as concern of all body parts and externally as concern of his environment. - Voltemer and Essllinger)

**मेरी बेकर एड्डी के अनुसार, "स्वास्थ्य वस्तु अवस्था न होकर, मानसिक अवस्था हैं।"** (Health is not a physical state but a mental state. - Mary Baker Eddy)

**विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार,** "शारीरिक, मानसिक और सामाजिक दृष्टि से पूर्णतया सुखी होना ही स्वास्थ्य हैं, केवल रोग या विकृति से मुक्त रहना ही स्वास्थ्य नहीं हैं।" (Health is a state of complete physical, mental and social well being and not merely the absence of

disease of infirmity. - World health organisation)

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि स्वास्थ्य व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक व भावात्मक रूप से अच्छे होने की दशा होती है, केवल बीमारी व विकृति से मुक्त रहने को ही स्वास्थ्य नहीं कहा जा सकता।

## स्वास्थ्य के आयाम
## (Dimensions of Health)

स्वास्थ्य को पूर्ण रूप में समझने के लिए इसके सभी आयामों को समझना अति आवश्यक है। वास्तव में, एक व्यक्ति को हम तभी स्वस्थ कह सकते हैं जब वह किसी भी आयाम में कम न हो। यदि किसी एक आयाम में भी वह व्यक्ति कम हो तो उसे स्वस्थ व्यक्ति नहीं कहा जा सकता। स्वास्थ्य के निम्नलिखित आयाम होते हैं-

1. शारीरिक स्वास्थ्य (Physical Health)
2. मानसिक स्वास्थ्य (Mental Health)
3. सामाजिक स्वास्थ्य (Social Health)
4. भावनात्मक स्वास्थ्य (Emotional Health)
5. आध्यात्मिक स्वास्थ्य (Spiritual health)

1. **शारीरिक स्वास्थ्य (Physical Health)** - किसी व्यक्ति का शारीरिक स्वास्थ्य कई तत्वों पर निर्भर करता हैं, जैसे- जैविक, वातावरणीय, सामाजिक- सांस्कृतिक तत्व, जिनमें अच्छा शरीर, कद के अनुसार उचित भार, साफ रंग, चमकदार आँखें, साफ त्वचा और सुंदर बाल शामिल हो ये व्यक्तित्व के भाग हैं। शारीरिक स्वास्थ्य जीवन के लिए जरूरी है। अच्छा स्वास्थ्य पाने के लिए हमारे शरीर के विभिन्न संस्थानों को अपने कार्य सुचारू रूप से करने चाहिए।
2. **मानसिक स्वास्थ्य (Mental Health)** - शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य के बिना अधूरा है। मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ है- तनाव और दबाव से मुक्ति। यदि व्यक्ति का मानसिक स्वास्थ्य ठीक होता है तो उसके मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य के मध्य सह-सम्बन्ध अच्छा होता है। मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य एक- दूसरे को प्रभावित करते हैं। कई बार मानसिक स्वास्थ्य व्यक्ति के संवेगों (भावों) को समझने में असमर्थ होता है। मानसिक रूप से वह व्यक्ति स्वस्थ होता है जो स्वयं को सुरक्षित तथा सुव्यवस्थित महसूस करता है।
3. **सामाजिक स्वास्थ्य (Social Health)** - सामाजिक स्वास्थ्य व्यक्ति की सामाजिक सुरक्षा पर निर्भर करता है। यदि व्यक्ति सुरक्षित नहीं हैं तो वह सामाजिक रूप से स्वस्थ नहीं होगा। यह कुछ कारकों पर निर्भर करता है जो इस प्रकार हैं- स्वास्थ्य सेवाएँ, पेंशन, ग्रेच्युटी, जीवन बीमा, प्रोविडेंट फंड सम्बन्धी सुविधाएँ। सामाजिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति सैद्धांतिक, आत्म- निर्भर व जागरूक होता है। जीवन के प्रति उसका सकारात्मक दृष्टिकोण होता है।
4. **भावात्मक स्वास्थ्य (Emotional Health)** - भावात्मक रूप से स्वस्थ उस व्यक्ति को कहा जा सकता है जो अपने संवेगो या भावनाओं (Emotions) जैसे डर, क्रोध, सुख, दुख, ईर्ष्या व द्वेष

आदि के ऊपर अपना उचित नियंत्रण रख सके। प्रत्येक परिस्थिति में ऐसी भावनाओं पर उसका नियंत्रण होना चाहिए। आज के तनाव व दबाव युक्त जीवन में भावनात्मक रूप से स्वस्थ होना अति आवश्यक है।

5. **आध्यात्मिक स्वास्थ्य (Spiritual Health)** - आध्यात्मिक स्वास्थ्य का अर्थ है व्यक्ति का अपने मन पर नियंत्रण होना। आज के दबाव व तनावयुक्त जीवन में आध्यात्मिक स्वास्थ्य का होना भी नितांत आवश्यक है। इसके लिए व्यक्ति में नैतिक मूल्यों का होना भी जरूरी होता है।

## स्वास्थ्य शिक्षा की अवधारणा
## (Concept of Health Education)

आज का युग वैज्ञानिक युग है। इस युग में इलेक्ट्रॉनिक्स, अंतरिक्ष और मशीनीकरण के क्षेत्र में बहुत उन्नति हुई है। इगर इसके दूसरे पहलू को देखें तो हम कह सकते हैं कि आज का युग प्रदूषण का युग है। इस प्रदूषित युग का प्रभाव व्यक्ति के स्वास्थ्य पर पड़ता है और स्वास्थ्य, शारीरिक शिक्षा का महत्वपूर्ण उद्देश्य है। मनुष्य के स्वास्थ्य को ठीक रखना हमारे लिए चिंता का विषय बन गया है। शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रमों में स्वास्थ्य का बड़ा योगदान हैं, जबकि स्वास्थ्य, शारीरिक क्रियाओं पर निर्भर करता है। शारीरिक शिक्षा का एक अच्छा बना हुआ कार्यक्रम, स्वास्थ्य के लिए लाभदायक सिद्ध हो सकता हैं, फिर भी स्वच्छता, संचारी रोगों से बचाव, स्वच्छ अवस्था, बीमारियों का इलाज, पर्याप्त मात्रा में संतुलित भोजन, नियमित व्यायाम व रहन- सहन का स्तर अच्छा होना आदि कुछ ऐसे महत्वपूर्ण कारक हैं जिन पर स्वास्थ्य निर्भर करता है। अतः स्वास्थ्य शिक्षा के विषय में जानना एक महत्वपूर्ण आवश्यकता बन गई है।

आधुनिक युग में स्कूलों, में स्वास्थ्य शिक्षा को पढ़ाते समय ऐसे तरीकों को अपनाना चाहिएं जिनसे केवल स्वास्थ्य का ही विकास न हो, बल्कि व्यक्तिगत रूप से अच्छी आदतों का भी निर्माण हो, जो विद्यार्थियों के अच्छे स्वास्थ्य के निर्माण में अपना सर्वोत्तम प्रभाव डालें।

**डॉ. थॉमस वुड के शब्दों में,** "स्वास्थ्य शिक्षा उन अनुभवों का जोड़ है जो व्यक्ति, समुदाय एवं सामाजिक स्वास्थ्य के साथ सम्बन्धित आदतों, प्रवृतियों एवं ज्ञान को सही रूप में प्रभावित करता है।"

**ब्राउंड के अनुसार,** "स्वास्थ्य शिक्षा का भाव यह है कि स्वास्थ्य के बारे में जो कुछ भी ज्ञान है उसको शिक्षा की विधि द्वारा उचित, व्यक्तिगत एवं सामुदायिक व्यवहार में बदलना है।"

वास्तव में स्वास्थ्य शिक्षा में वे सब क्रियाएं शामिल होती हैं जिनसे व्यक्ति में स्वास्थ्य के प्रति सजगता बढ़ती है। इसके फलस्वरूप उसका स्वास्थ्य ठीक रहता है।

### स्वास्थ्य शिक्षा का क्षेत्र (Scope of Health Education)

स्वास्थ्य शिक्षा का क्षेत्र काफी विस्तृत हैं, क्योंकि इसमें स्वास्थ्य के ज्ञान के अलावा और भी बहुत-से पहलू शामिल है। मुख्य रूप से स्वास्थ्य शिक्षा के तीन क्षेत्र हैं जिनका वर्णन निम्नलिखित है।

1. स्वास्थ्य सेवाएँ (Health Services)
2. स्वास्थ्य निरीक्षण (Health Supervision)
3. स्वास्थ्य निर्देशन (Health instructions)

1. **स्वास्थ्य सेवाएँ (Health Services)** - स्वास्थ्य सेवा का मुख्य कार्य असामान्य और अपंगता, जिससे बच्चे पीड़ित होते हैं, को देखना व माता- पिता के सहयोग से उन्हें सही करना है। बच्चों को बीमारियों से, विशेष रूप से संक्रामक रोगों से बचाना भी इसका मुख्य कार्य है। स्वास्थ्य सेवा के कई कार्य हैं, जैसे- समय- समय पर मेडिकल जाँच, बचाव के तरीकों को अपनाना, सुरक्षा व प्राथमिक उपचार करना आदि। साल में एक बार विद्यार्थियों के स्वास्थ्य की जाँच व मूल्यांकन बहुत जरूरी है। शारीरिक विकास के लिए शारीरिक शिक्षा का विषय प्रत्येक स्कूल में अनिवार्य होना चाहिए। शारीरिक शिक्षा की क्रियाओं द्वारा विद्यार्थी के व्यक्तित्व का विकास होता है। मानसिक स्वास्थ्य शिक्षा भी सही ढंग से दी जानी चाहिएं।

2. **स्वास्थ्य निरीक्षण (Health Supervision)** - स्कूल का वातावरण स्वस्थ होना चाहिएं। स्कूल का जैसा वातावरण होगा, वैसा ही प्रभाव बच्चों पर पड़ेगा। अतः विद्यालय का यह कर्तव्य है कि वह विद्यार्थियों के लिए स्वास्थ्यप्रद वातावरण बनाए। इसे हम निम्नलिखित बातों का अनुसरण करके कर सकते हैं, जैसे- साफ व हवादार कक्ष, शुद्ध पानी का प्रबंध, प्रकाश इत्यादि का उचित प्रबंध।

   शहर के स्कूलों में सबसे बड़ी स्वास्थ्य की समस्या स्कूल के आस- पास रेहड़ी पर सस्ता व गंदी दुकानों पर बिना ढँका खाद्य पदार्थ बेचने की है। अतः यह प्रयास किया जाना चाहिए कि ऐसी दुकानों को स्कूल से दूर रखा जाए ओर विद्यार्थियों को शिक्षित किया जाए कि इस तरह के खाद्य पदार्थ खाने से बीमारियाँ हो जाती है ओर ऐसे खादुय पदार्थ स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं। स्कूल में शौचालयों का उचित प्रबंध होना चाहिए और उनमें सफाई व पानी की पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिए।

3. **स्वास्थ्य निर्देशन (Health instructions)** - 'स्वास्थ्य निर्देशन का अर्थ है:- स्वास्थ्य के विषय में निर्देश। इसका मुख्य कार्य है बच्चों को स्वास्थ्य के विषय में पर्याप्त ज्ञान देना तथा इसके साथ-साथ इस बात का मार्गदर्शन करना कि इस ज्ञान का व्यवहार की दृष्टि से जीवन में क्या योगदान है और उसको किस प्रकार आचरण में लाया जा सकता है, केवल पुस्तकीय ज्ञान तक ही सीमित न रहकर व्यावहारिक ज्ञान देना भी आवश्यक है।

छोटे बच्चों को स्वास्थ्य का ज्ञान देने के लिए उन्हें सबसे पहले व्यक्तिगत स्वच्छता के विषय में बताना चाहिए, जिसमें हाथों की सफाई, बालों, आँखों, कानों की सफाई इत्यादि शामिल है। स्वास्थ्य निर्देशन को अधिक रोचक बनाने के लिए स्वास्थ्य से सम्बन्धित फिल्म दिखानी चाहिए, क्योंकि इसका प्रभाव बच्चों पर अधिक देर तक रहता है। चार्ट, मॉडल, चित्र इत्यादि स्वास्थ्य शिक्षा देनें में लाभदायक सामग्री है। किशोरावस्था में बच्चों को पौष्टिक व संतुलित आहार के विषय में जानकारी देनी चाहिए। हमारे राष्ट्र को स्वस्थ बनाने में स्वास्थ्य शिक्षा में स्वास्थ्य सेवाओं, स्वास्थ्य सेवाओं, स्वास्थ्य निर्देशन और स्वास्थ्य पर्यवेक्षण का महत्वपूर्ण योगदान है।

प्रश्न-2. स्वास्थ्य शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य क्या हैं? एवं इसके सिद्धान्त एवं महत्व की भी चर्चा करें।

**What are aim and objectives of health education? And also discuss its principles and importance.**

**उत्तर - लक्ष्य (Aim)** - स्वास्थ्य शिक्षा में शरीर का सर्वप्रथम स्थान है अर्थात् हृष्ट-पुष्ट शरीर, कुशल इन्द्रियाँ, हाथों व पैरों के संचालन में कुशलता, अच्छी आदतें, निर्मल तथा संयमित शरीर का होना परम आवश्यक है। अतः स्वास्थ्य शिक्षा का लक्ष्य बच्चों में स्वास्थ्यप्रद वातावरण देकर उनमें अच्छे आचरण व अच्छी आदतों का बीजारोपण करना है। डॉ. ओबर्टेफर (Dr. Oberteuffer) के अनुसार, "विद्यालय में स्वास्थ्य शिक्षा का मुख्य लक्ष्य है कि व्यक्ति अपने स्वास्थ्य सम्बन्धी स्थितियों में अनुकूल आचरण करे।"

अतः यह कहा जा सकता है कि स्वास्थ्य शिक्षा का लक्ष्य बच्चों को केवल ज्ञान प्रदान करने तक ही सीमित नहीं हैं, बल्कि अभ्यास और अभिवृतियाँ परिवर्तित करने की अनुकूल प्रभावशली परिस्थितियाँ प्रदान करना भी है। वास्तव में, स्वास्थ्य शिक्षा का लक्ष्य व्यक्ति में ऐसे गुणों का विकास करना हैं, जिससे व्यक्ति दीर्घायु होकर भी उत्तम सेवाएँ प्रदान कर सके।

**उद्देश्य (Objectives)**

**सी.ई.टर्नर.** (C.E. Turner) - **के अनुसार "विद्यार्थियों का समुचित विकास, स्वास्थ्य शिक्षा पर निर्भर करता है।"** अतः उनके लिए स्वास्थ्य शिक्षा के निम्न उद्देश्य होने चाहिए -

1. विद्यालय में स्वास्थ्यपूर्ण वातावरण बनाए रखना।
2. बच्चों में ऐसी स्वाभाविक आदतों का विकास करना, जो स्वास्थ्यप्रद हों।
3. संक्रामक रोगों (Communicable Diseases) से बचने के उपाय करना।
4. विद्यालय, घर और समाज में उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिए आपसी सहयोग विकसित करना।
5. शारीरिक रोगों की जाँच करना व सुधरने योग्य विद्यार्थियों को सुधारने की कोशिश करना।
6. सभी विद्यार्थियों के स्वास्थ्य का निरीक्षण करना व निर्देश देना।
7. सभी विद्यार्थियों में स्वास्थ्य संबंधी ज्ञान तथा अभिवृति का विकास करना।
8. व्यक्तिगत सफाई तथा स्वच्छता के बारे में न केवल ज्ञान प्रदान करना, अपितु अभ्यास भी करना।

1. **स्वास्थ्य सम्बन्धी आदतों का विकास (Development of Health Related Habits)** - स्वास्थ्य शिक्षा का मुख्य उद्देश्य स्वास्थ्य संबंधी आदतों का विकास करना है। इसके लिए बच्चों व व्यक्तियों को स्वास्थ्य से सम्बन्धित आदतों के बारे में बताया जाना चाहिए। इसके साथ - साथ इन आदतों का अभ्यास भी कराया जाना चाहिए, क्योंकि इस प्रकार का ज्ञान, उस समय तक व्यर्थ है जब तक ये लागू न की जाएँ। इसके अंतर्गत उन्हें व्यक्तिगत सफाई एवं स्वच्छता के बारे में पूर्ण जानकारी प्रदान करनी चाहिएं।
2. **स्वास्थ्य के बारे में सजगता (Awareness about Health)** - व्यक्तियों को स्वास्थ्य के बारे में सजग करना ही स्वास्थ्य शिक्षा का अहम् उद्देश्य है। स्वास्थ्य के बारे में उन्हें सचेत किया

जाना चाहिए। उन्हें स्वास्थ्य के महत्व के बारे में उचित जानकारी दी जानी चाहिए, जिससे वे स्वस्थ नागरिक बनकर देश के उत्थान में अपना बहुमूल्य योगदान प्रदान कर सकें। इस प्रकार की जानकारी उन्हें टी.वी., समाचार- पत्रों, स्वास्थ्य विभाग, विद्यालयों व महाविद्यालयों के माध्यम से प्रदान की जा सकती है।

3. **रोगों के बारे में विस्तृत जानकारी प्रदान करना (To provide the Detailed Knowledge about Diseases)** - स्वास्थ्य शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तियों को विभिन्न असंक्रामक व संक्रामक रोगों के बारे में विस्तृत जानकारी देना भी है, जिससे उनके स्वास्थ्य को ठीक रखा जा सके। यदि उनको इस प्रकार का ज्ञान प्रदान कराया जाए तो वे अनेक रोगों से अपना बचाव भली- भांति कर सकते हैं। वे इस कहावत को 'परहेज इलाज से बेहतर है" चरितार्थ कर सकते हैं।

4. **प्राथमिक चिकित्सा की जानकारी प्रदान करना (To Provide the knowledge of first Aid)** - स्वास्थ्य शिक्षा का उद्देश्य प्राथमिक चिकित्सा प्रदान करना भी है। इसके अंतर्गत व्यक्तियों को प्राथमिक चिकित्सा के सामान्य सिद्धान्तों की तथा विभिन्न परिस्थितियों में, जैसे- सांप के काटने पर, डूबने पर , जलने पर, अस्थि टूटने आदि पर प्राथमिक चिकित्सा की जानकारी प्रदान की जाती है, क्योंकि इस प्रकार की दुर्घटनाएं कहीं पर, कभी भी तथा किसी के भी साथ घट सकती है तथा व्यक्ति का जीवन खतरे में पड़ सकता है।

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि स्वास्थ्य शिक्षा के उपरोक्त उद्देश्यों को अपनाते हुए हम इसके लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं अर्थात् सभी व्यक्तियों के स्वास्थ्य के स्तर को ऊपर उठा सकते हैं।

## स्वास्थ्य शिक्षा के सिद्धान्त
## (Principles of Health Education)

स्वास्थ्य शिक्षा के कुछ आधारभूत सिद्धान्त है, जिनका वर्णन नीचे दिया गया है -

1. स्वास्थ्य शिक्षा के कार्यक्रम, बच्चों की रूचि, अभिवृति, स्वास्थ्य के स्तर तथा वातावरण की आवश्यकता के अनुसार होने चाहिए। इससे बच्चों का स्वास्थ्य सम्बन्धी पूर्ण जानकारी मिलेगी जिससे वे इस ज्ञान को कुशलतापूर्वक अपने जीवन में लागू कर सकेंगे।
2. प्रायः यह देखा जाता है कि व्यावहारिक ज्ञान अधिक उपयोगी सिद्ध होता है। इसलिए स्वास्थ्य कार्यक्रम ऐसे होने चाहिए जिनमें बच्चे स्वयं भाग ले सकें। इनमें भाग लेने के लिए बच्चों को चुनना उचित नहीं होता, बल्कि प्रत्येक बच्चे को स्वास्थ्य कार्यक्रम में भाग लेने के पूर्ण अवसर देने चाहिए।
3. स्वास्थ्य से सम्बन्धित कार्यक्रमों को केवल विद्यालयों तक ही सीमित नहीं रखना चाहिए, अपितु बच्चों के माता-पिता तक भी पहुँचाना चाहिए, ताकि वे भी अपने बच्चों के स्वास्थ्य पर उचित ध्यान दे सकें।
4. स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यक्रम रूचिकर, मनोरंजक तथा शिक्षाप्रद होने चाहिए। ऐसे कार्यक्रमों में लोग बढ़- चढ़ कर भाग अवश्य लेंगे। यदि इस प्रकार की शिक्षा सही ढंग से दी जाती है तो लोगों के मस्तिष्क पर लाभदायक प्रभाव पड़ेगा। वे स्वास्थ्य के प्रति अधिक जागरूक रहेंगे जो कि

स्वास्थ्य शिक्षा का मुख्य लक्ष्य है।

5. स्वास्थ्य कार्यक्रम को बनाते हुए कुछ बातों का विशेष रूप से ध्यान रखा जाना चाहिए जैसे कि विद्यार्थियों की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक व आध्यात्मिक दशाएं आदि।
6. प्रत्येक बच्चे में कुछ विशेष गुण होते हैं। अतः स्वास्थ्य शिक्षा के कार्यक्रम ऐसे होने चाहिए जिनसे कि प्रत्येक बच्चा कुछ- न कुछ सीख सकें।
7. स्वास्थ्य शिक्षा के कार्यक्रम व्यक्तियों के लिंग तथा आयु के अनुसार होने चाहिए।
8. स्वास्थ्य शिक्षा प्रदान करने के तरीके साधारण तथा स्पष्ट होने चाहिए।
9. बच्चों की अच्छी आदतों की प्रशंसा की जानी चाहिए तथा बुरी आदतों के बारे में बताना चाहिए कि इनके परिणाम कितने बुरे होते हैं। इस प्रकार बच्चों में अच्छी आदतों का विकास किया जा सकता है।

**स्वास्थ्य शिक्षा का महत्व**
**(Importance of Health Education)**

इमर्सन के शब्दों में, "स्वास्थ्य पहली पूंजी है।"

स्वास्थ्य शिक्षा हमारी कई तरीकों से सहायता करती हैं, जिनका उल्लेख नीचे लिखा गया हैं -

1. यह स्वास्थ्य व स्वास्थ्य विज्ञान के विषय में जानकारी देती है।
2. यह शारीरिक विकृतियों को खोजने में सहायक है।
3. स्वास्थ्य सम्बन्धी जरूरी आदतों को बढ़ाने में सहायक है।
4. यह अच्छे स्वास्थ्य का आदर्श बनाये रखने में सहायक है।
5. यह मानवीय सम्बन्धों को बढ़ाती है।
6. यह बीमारियों से बचाव व रोकथाम के विषय में ज्ञान देती है।
7. यह हमें प्राथमिक सहायता का प्रशिक्षण देती है।

**प्रश्न-3. स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारक क्या हैं? इनकी विस्तार से चर्चा करें।**
**What are affecting factors to health? Discuss in detail.**

**उत्तर** - व्यक्ति के स्वास्थ्य को निम्नलिखित कारक प्रभावित करते हैं -

1. जैविक कारक (Biological Factors)
2. वातावरण से सम्बन्धित कारक (Environmental Factors)
3. व्यक्तिगत कारक (Personal Factors)

1. **जैविक कारक (Biological Factors)** - वंशानुक्रम कारक व जैविक कारक दोनों एक समान हैं क्योंकि वंशानुक्रम जैविक कारक से ही पहुँचता है और यह हमारे शरीर को प्रभावित करता है। हमारे शरीर व स्वास्थ्य की रचना कुछ अंशों में वंशानुक्रम व कुछ अंश में वातावरणीय है। वंशानुक्रम, व्यक्तित्व के विकास में अपनी अहम् भूमिका रखता है। जो गुण अपने जन्म के समय हम प्राप्त करते हैं, उसे ही 'वंशानुक्रम' (Heredity) कहते हैं। जन्म से ही किसी बच्चे का

शारीरिक ढाँचा मजबूत होता हैं तथा किसी का कमजोर। जिनका शारीरिक ढाँचा मजबूत होता है वे कठिन- से - कठिन कार्य भी आसानी से कर लेते हैं। लेकिन ऐसे बच्चे, जो जन्म से ही शारीरिक व मानसिक रूप से कमजोर होते हैं, वे जीवन में जटिल कार्य करने में पूर्ण रूप से सक्षम कभी नहीं हो पाते।

सहवास के समय पुरूष के शुक्राणु (Sperms) स्त्री के रज (Ovum) से मिलते हैं, जिनके संयोग से भ्रूण बनता है। पुरूष और स्त्री के कीटाणु कोशिकाओं 'Gametes' को कहा जाता है। अंडे और शुक्राणु में पतले धागे जैसी संरचना होती हैं, जिसे क्रोमोसोम (Chromosomes) कहते हैं। प्रत्येक क्रोमोसोम डी.एन.ए. (Deoxyribonucleic Acid) से बना होता है। ये ही वंशानुक्रम (Heredity) के वाहक होते हैं। आने वाली संतान के रंग, रूप, बुद्धि, बाल, आँखों का रंग तथा शारीरिक ढाँचा ये 'जीन' (Genes) ही निर्धारित करते हैं। यदि जीन स्वस्थ होते हैं तो आने वाली संतान भी स्वस्थ होती है।

2. **वातावरण से सम्बन्धित कारक (Environmental Factors)** - बीस से तीस हजार वर्ष पहले की अपेक्षा मनुष्य शारीरिक क्रिया व शरीर रचना में बहुत कम बदला है। वातावरणीय कारकों की वजह से मनुष्य में बदलाव आया है। वातावरणीय कारक का अर्थ है कि जन्म के पश्चात् हमें क्या प्राप्त होता हैं? परन्तु कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि वातावरण का प्रभाव जन्म से पहले भी मनुष्य पर पड़ता है। वे कहते हैं कि बच्चा माँ के गर्भाशय में आन्तरिक व बाह्य वातावरण से प्रभावित होता है। अर्थात् बच्चो पर माँ के आन्तरिक वातावरण व बाह्य वातावरण का प्रभाव पड़ता है। एक व्यक्ति के शारीरिक विकास में वातावरण का महत्वपूर्ण योगदान होता है। वातावरण दो प्रकार के होते हैं:-

क) **आन्तरिक वातावरण (Internal Environment)** - आन्तरिक वातावरण का सम्बन्ध व्यक्ति की आन्तरिक स्थितियों से है। ये स्थितियाँ हमारे आंतरिक जैविकीय अंगों द्वारा कार्य करने से सम्बन्धित हैं। आंतरिक वातावरण की स्थिरता स्वस्थ व्यक्ति के रक्त की बनावट, शरीर का द्रव पदार्थ और शरीर के तापमान पर निर्भर करती हैं, परंतु कई बार बीमारी के कारण आंतरिक वातावरण को एक स्तर तक स्थिर नहीं रख सकते। उसको स्थिर रखने के लिए इलाज करना पड़ेगा। बाह्य वातावरण की तुलना में आंतरिक वातावरण शरीर के विकास के लिए अधिक महत्वपूर्ण कार्य करता है।

ख) **बाह्य वातावरण (External Environment)** - बाह्य वातावरण को मुख्यतया निम्नलिखित तीन भागों में विभक्त किया जा सकता हैं:-

I) **भौतिक वातावरण (Physical Environment)** - भौतिक वातावरण उन दशाओं से बना होता है जो मनुष्य को प्रकृति द्वारा प्रदान की जाती हैं। इसमें जलवायु, पर्वत, वनस्पति, नदियाँ, मैदानी भाग, पानी, रेगिस्तान, पशु जगत, कोस्मिक शक्तियाँ, गुरूत्वाकर्षण, विकिरण, वायु आदि आते हैं। भौतिक वातावरण भी दो प्रकार का होता हैं, जैसे- प्राकृतिक व कृत्रिम। कृत्रिम वातावरण में थोड़ा- बहुत परिवर्तन किया जा सकता हैं, लेकिन तापमान, जलवायु, ऊँचाई (altitude) व स्थानीय वातावरण का व्यक्ति के स्वास्थ्य पर विशेष रूप से प्रभाव पड़ता है। स्थानीय वातावरण

से गंदगी, धुआँ, धूल व मिट्टी के कण, नमी व विकिरण आदि के कारण व्यक्ति के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके विपरित यदि स्थानीय वातावरण साफ- स्वच्छ व सामान्य तापमान वाला होता है तो व्यक्ति के स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। भौतिक वातावरण का प्रभाव केवल व्यक्ति के शारीरिक स्वास्थ्य पर ही नहीं पड़ता, अपितु मानसिक स्वास्थ्य व सामाजिक स्वास्थ्य पर ही पड़ता है। वायु में नमी की मात्रा हमारे स्वास्थ्य व ऊर्जा (Energy) के नियंत्रण का एक प्रमुख कारक है। इसी प्रकार जलवायु भी हमारे शरीर की संरचना को काफी सीमा तक प्रभावित करती है। जनसंख्या का घनत्व भी हमारे स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। यदि जनसंख्या का घनत्व अधिक होता है तो हमारे स्वास्थ्य पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हैं कार्ल पियर्सन (Karl Pearson), मैक (Mack) व यंग (Young) द्वारा किए गए अनुसंधानों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भौतिक वातावरण के अनेक कारकों का व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक व सामाजिक स्वास्थ्य पर काफी प्रभाव पड़ता है।

II) **आर्थिक वातावरण (Economic Environment)** - आर्थिक वातावरण में आर्थिक वस्तुएँ, घर, सड़कें, वाहन की सुविधाएँ, मशीनें अर्थात् सभी सुख व सुविधाएँ शामिल की जाती हैं। इन्हीं सुख- सुविधाओं से व्यक्ति का जीवन स्तर (Standard of living) प्रभावित होता है। व्यक्ति का जीवन स्तर या आर्थिक स्तर व्यक्ति के स्वास्थ्य के शारीरिक, मानसिक व सामाजिक पहलुओं को निर्धारित करता है। उच्च आर्थिक स्तर व्यक्ति के स्वास्थ्य पर अनुकूल प्रभाव डालता है तथा निम्न आर्थिक स्तर व्यक्ति के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। यहाँ तक कि निम्न आर्थिक स्तर व्यक्ति के स्वास्थ्य की मात्रा (Quantity) को ही नहीं, बल्कि उसके स्वास्थ्य की गुणवता (Quality) को भी प्रभावित कर व्यक्ति की आयु को भी कम करता है।

III) **सामाजिक - सांस्कृतिक वातावरण (Socio- Cultural Environment)** - व्यक्ति समाज का अंग है और व्यक्तियों से ही समाज बनता है। व्यक्ति समाज को तथा समाज व्यक्ति को प्रभावित करता है। जहाँ एक ओर व्यक्ति की स्वस्थ आदतें, स्वस्थ समाज के निर्माण में सहायक हैं, वहीं पर समाज में उपलब्ध स्वास्थ्य सेवा कार्यक्रम एवं सामाजिक स्वच्छता व्यक्ति के स्वास्थ्य को अच्छा बनाने में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करते हैं। इनमें मुख्यतया, स्वास्थ्य सेवाएँ व चिकित्सा सुविधाएँ आती हैं। इनके साथ- साथ परंपराएँ, रीति- रिवाज, प्रथाएँ, अंधविश्वास, विश्वास, आचार- विचार, नैतिकता, संस्कृति आदि भी व्यक्ति के स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं।

3. **व्यक्तिगत कारक (Personal Factors)** - व्यक्तिगत कारक, जो व्यक्ति के स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं, उनका वर्णन निम्नलिखित है -

क) **शारीरिक व्यायाम (Physical Exercise)** - शारीरिक व्यायाम व्यक्ति के स्वास्थ्य को काफी सीमा तक प्रभावित करता है। यदि व्यक्ति शारीरिक व्यायाम नियमित रूप से करता है तो उसका स्वास्थ्य अच्छा होता है जबकि इसके अभाव में व्यक्ति के स्वास्थ्य के शारीरिक व मानसिक पक्षों में कमी आ जाती है।

ख) **संतुलित आहार (Balanced Diet)** - संतुलित आहार और व्यक्ति के स्वास्थ्य का प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। संतुलित आहार के तत्वों में से यदि किसी एक तत्व की भी कमी रह जाती है तो उससे

भी व्यक्ति के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। संतुलित आहार के अभाव से व्यक्ति को अनेक रोग व विकृतियाँ हो जाती हैं।

ग) **आराम, शिथिलता व निद्रा (Rest, Relaxation and sleep)** - आराम, शिथिलता व निद्रा का प्रभाव भी व्यक्ति के स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। यदि आराम, शिथिलता व निद्रा का अभाव होता है तो स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसकी अपेक्षा यदि व्यक्ति पूर्ण रूप से आराम व निद्रा लेता है तो व्यक्ति का स्वास्थ्य अच्छा होता है।

घ) **व्यक्तिगत स्वच्छता (Personal Cleanliness)** - व्यक्तिगत सफाई एवं स्वच्छता भी व्यक्ति के स्वास्थ्य को काफी सीमा तक प्रभावित करती है। इसके अंतर्गत कानों की सफाई, आँखों की सफाई, नाखूनों व हाथों की सफाई, त्वचा की सफाई, दाँतों की सफाई, नाक आदि की सफाई आती है। यदि व्यक्तिगत सफाई पर ध्यान न दिया जाए तो स्वास्थ्य बुरी तरह प्रभावित होता है।

ड) **स्वास्थ्य के प्रति दृष्टिकोण (Attitude towards Health)** - व्यक्ति का स्वास्थ्य के प्रति दृष्टिकोण भी स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। यदि व्यक्ति स्वास्थ्य के प्रति सचेत एवं सजग है तथा स्वास्थ्य के प्रति उसका दृष्टिकोण सकारात्मक है तो निश्चित रूप से उसका स्वास्थ्य अच्छा होता है। यदि उसमें स्वास्थ्य को उन्नत करने की इच्छा-शक्ति (Will- power) हो तो उसका स्वास्थ्य उत्तम रहता है। इसके विपरित यदि उसका दृष्टिकोण नकारात्मक है तो उसका स्वास्थ्य निम्न स्तर का होता है।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि उपरोक्त सभी कारक प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति के स्वास्थ्य को किसी न किसी सीमा तक अवश्य प्रभावित करते हैं।

**प्रश्न-4. स्वास्थ्य शिक्षा प्रदान करने में एक शिक्षक की क्या भूमिका है? एवं विद्यालयी स्वास्थ्य कार्यक्रम क्या है? विस्तार से चर्चा करें।**

**What is role of a teacher in imparting health education? And What is school health programme? Discuss in detail.**

## उत्तर - स्वास्थ्य शिक्षा प्रदान करने में एक शिक्षक की भूमिका

### (Role of a Teacher in Imparting Health Educational)

साधारणतया देखा जाए तो विद्यालय में विद्यार्थियों के स्वास्थ्य में सुधार लाने के लिए प्राचार्य, मुख्याध्यापक, शिक्षक वर्ग व गैर- शिक्षक वर्ग की सांझी जिम्मेदारी होती हैं, लेकिन स्वास्थ्य से सम्बन्धित कार्यक्रम को उचित ढंग से लागू करने में शिक्षक की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है। एक शिक्षक को विद्यार्थियों का मित्र, दार्शनिक व एक अच्छा मार्गदर्शक बनाना पड़ता है, केवल तभी वह स्वास्थ्य को बढ़ाने में विद्यार्थियों का उचित नेतृत्व कर सकता है। विद्यार्थियों के स्वास्थ्य के स्तर को बढ़ाने में एक शिक्षक निम्नलिखित भूमिका अदा कर सकता है।

1. **स्वास्थ्य एवं स्वास्थ्य विज्ञान के बारे में निर्देशों को प्रदान करने के द्वारा (By Providing Instructions regarding health and hygiene)** - एक अच्छे शिक्षक को विद्यार्थियों के स्वास्थ्य में वृद्धि करने के लिए स्वास्थ्य से सम्बन्धित सभी निर्देश देने चाहिए। विद्यार्थियों को

स्वास्थ्य शिक्षा से सम्बन्धित पूर्ण जानकारी प्रदान करनी चाहिए। उसे स्वास्थ्य विज्ञान, शरीर रचना विज्ञान व शरीर क्रिया विज्ञान की जानकारी भी देनी चाहिए। इस प्रकार की जानकारी प्रदान करने के लिए उसे विशेष तरीकों जैसे स्वास्थ्य सप्ताह मनाना, स्वास्थ्य क्लबों का बनाना या ऐसे क्लबों में विद्यार्थियों को ले जाना, फिल्म स्ट्रिप्स दिखाना, स्वास्थ्य से सम्बन्धित मेलों में ले जाना, स्वास्थ्य से सम्बन्धित प्रदर्शनी का आयोजन करना व पोस्टर लगाना आदि की मदद लेनी चाहिए।

2. **व्यक्तिगत सफाई पर विशेष बल देकर (By laying stress on personal cleanliness)** - विद्यार्थियों के स्वास्थ्य में बढ़ोतरी करने के लिए एक शिक्षक को विद्यार्थियों की व्यक्तिगत सफाई पर विशेष बल देना चाहिए। इसके लिए प्रतिदिन प्रार्थना के समय सभी विद्यार्थियों की व्यक्तिगत सफाई का निरीक्षण किया जाना चाहिए। शिक्षक को चेहरों, नाखूनों, बालों, उंगलियों, दांतों व कपड़ों आदि पर ध्यान देना चाहिए।

3. **स्वास्थ्यप्रद आदतों को विकसित करने के द्वारा (By developing healthful habits)** - स्वास्थ्यप्रद आदतों को विद्यार्थियों में विकसित करके, एक शिक्षक स्वास्थ्य में बढ़ोतरी करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान प्रदान कर सकता है। इसके लिए उसे निम्न स्वास्थ्यप्रद आदतों पर विशेष बल देना चाहिए -

क) **ताजी वायु से सम्बन्धित आदतें (Habits regarding fresh air)** - एक शिक्षक को ताजी वायु से सम्बन्धित आदतों को विद्यार्थियों में विकसित करने पर विशेष बल देना चाहिए। उनको इस बात से भली- भांति अवगत कराना चाहिए कि रात को सोने के समय मुँह ढककर नहीं सोना चाहिए। सोने के कमरे की खिड़कियाँ खुली रखनी चाहिए तथा हमेशा नाक से ही श्वास लेना चाहिए। धूल मिट्टी के कणों से जहाँ तक हो सके बचना चाहिए। शाम की सैर की अपेक्षा सुबह की सैर करनी चाहिए, क्योंकि सुबह के समय वातावरण में धूलरहित ताजी वायु शाम के समय की अपेक्षा अधिक होती है।

ख) **स्वस्थ आहार लेने सम्बन्धी आदतें (Habits related to the intake of healthy food)** - एक शिक्षक, विद्यार्थियों में स्वस्थ आहार लेने सम्बन्धी आदतों को विकसित कर सकता है।, जिससे विद्यार्थियों के स्वास्थ्य के स्तर को भली-भांति बढ़ाया जा सकता है। विद्यार्थियों को यह सिखाया जाना चाहिए कि उन्हें शरीर की आवश्यकता के अनुसार स्वस्थ आहार लेना चाहिए। उन्हें अस्वास्थ्यकर आहर से होने वाली हानियों के बारे में भी अवगत कराना चाहिए। आजकल अधिकतर विद्यार्थी मोटापे (Obesity) के शिकार हो रहे हैं। अतः उन्हें इस बात की जानकारी प्रदान करनी चाहिए कि वे ऐसे आहार जैसे चॉकलेट, बर्गर, पिज्जा (Pizza), ठण्डे पेय पदार्थ आदि न लें। भोजन करने से पहले हाथों को साबुन से साफ अवश्य करें। फलों को भली भांति साफ करके ही खाएँ। अतः शिक्षक उपर्युक्त आदतों को विकसित करके विद्यार्थियों के स्वास्थ्य में बढ़ोतरी कर सकता है।

ग) **कक्षा सम्बन्धी आदतें (Habits related to class-room)** - विद्यार्थियों के स्वास्थ्य को उन्नत करने में एक शिक्षक बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। यदि वह कक्षा सम्बन्धी आदतों

का उचित विकास करें। प्रायः देखा जाता है कि विद्यार्थी कक्षा में अपने आसन (Posture) के प्रति सजग एवं सतर्क नहीं रहते। अतः शिक्षक को चाहिए कि वह विद्यार्थियों को पढ़ने- लिखने व खड़े होने के समय आसन की स्थिति के प्रति सचेत रखें अर्थात् पढ़ते हुए, लिखते हुए या खड़े हुए आसन कैसा होना चाहिए। इस प्रकार की जानकारी से वे अपने आसन के प्रति सजग रहेंगे। उन्हें ऐसे निर्देश भी दिए जाने चाहिए जैसे पेंसिल होंठों या दांतों के बीच में न रखना, खाँसते व छींकते हुए मुहँ व नाक पर रूमाल रखना व फर्श पर इधर- उधर न थूकना आदि। इस प्रकार एक शिक्षक स्वास्थ्य को बढ़ाने में काफी महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

4. **चिकित्सा परीक्षण (Medical Examination)** - विद्यालय में समय-समय पर विद्यार्थियों की चिकित्सा जाँच या परीक्षण अवश्य किया जाना चाहिए। ऐसी चिकित्सा जाँच में विद्यार्थियों के शारीरिक स्वास्थ्य के सभी पहलुओं की जाँच की जानी चाहिए। इसके साथ- साथ विद्यार्थियों के अनेक दोषों जैसे दृष्टि दोष, कानों के दोषो, दाँतों के रोगों व आसन सम्बन्धी दोषों की जाँच भी की जानी चाहिए। इस प्रकार की जाँच में शिक्षक, डाक्टर की मदद से महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। जिसके फलस्वरूप विद्यार्थियों के स्वास्थ्य को उन्नत किया जा सकता है। एक शिक्षक का कार्य यहीं पर समाप्त नहीं होता, अपितु उसे अनुवर्ती कार्यक्रम (Follow - up programme) अर्थात् विद्यार्थी के दोष या रोग की सूचना मुख्याध्यापक के माध्यम से बच्चे के माता-पिता तक पहुँचानी चाहिए ताकि बच्चे का समय रहते उपचार कराया जा सके।

5. **संक्रामक रोगों पर नियंत्रण के द्वारा (By controlling over communicable diseases)** - स्कूल के विद्यार्थियों के स्वास्थ्य को संक्रामक रोगों पर नियंत्रण के द्वारा भी बढ़ोतरी की जा सकती है। इस कार्यक्रम में शिक्षक महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है। अतः उसे चाहिए कि वह विद्यार्थियों को विभिन्न संक्रामक रोगों से बचाव के लिए रोग निरोधक टीके अवश्य लगवाएं। इस बारे में विद्यालय के स्वास्थ्य अधिकारी की सहायता से उचित योजना तैयार करनी चाहिए। संक्रामक रोगों पर नियंत्रण करने का यह एक सर्वोच्च तरीका है। डिफ्थीरिया, काली खाँसी, पोलियो, टेटनस व चेचक आदि संक्रामक रोगों से बचाव के लिए एक शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण हो सकती है।

6. **प्राथमिक चिकित्सा के प्रशिक्षण के द्वारा (By first - aid training)** - विद्यार्थियों को प्रदान किए गए प्राथमिक चिकित्सा के प्रशिक्षण के द्वारा उनके स्वास्थ्य को उन्नत किया जा सकता है। वास्तव में, दुर्घटना या अंपघात (Mishaping) विद्यालय में कहीं पर भी तथा कभी भी हो सकती है। प्राथमिक सहायता या चिकित्सा की जानकारी के अभाव में परिणाम भयानक भी हो सकते हैं। यह प्रशिक्षण रेडक्रास की यूनिट के द्वारा प्रतिवर्ष दिया जा सकता है। शिक्षक, ऐसी यूनिट में अपनी भागीदारी निभा सकता है।

7. **दोपहर के भोजन पर विशेष ध्यान (Special attention on mid day meal)** - आजकल सरकार की ओर से विद्यार्थियों को दोपहर के भोजन की विशेष सुविधा प्रदान की जाती हैं, क्योंकि सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले ऐसे काफी विद्यार्थी होते हैं जो कुपोषण (Malnutrition) के शिकार होते हैं। ऐसे बच्चों के पोषण का स्तर उचित नहीं होता। शिक्षक दोपहर के भोजन की उचित व्यवस्था करने में सहायता कर सकता है ताकि बच्चों को सन्तुलित आहार प्रदान कराया जा सकें। इस प्रकार शिक्षक के दोपहर के भोजन पर विशेष ध्यान देने से भी स्वास्थ्य को उन्नत किया जा

सकता है।

8. **शिक्षक एक आदर्श के रूप में (teacher as a model)** - एक शिक्षक व्यक्तिगत सफाई, स्वस्थ आदतों व अपने अच्छे व्यवहार के माध्यम से स्वयं को एक आदर्श के रूप में प्रस्तुत कर सकता है। इस प्रकार का उदाहरण बच्चों को अधिक प्रभावित कर सकता है।

9. **शारीरिक क्रियाओं पर विशेष बल देना (Laying specific stress on physical activities)** - नियमित रूप से तथा उचित शारीरिक क्रियाओं के द्वारा स्वास्थ्य में बढ़ोतरी की जा सकती है। भारतवर्ष में अधिकतर बच्चों में सक्रियता व पुष्टि का अभाव हैं, जिसके कारण उनका स्वास्थ्य का स्तर निम्न है। अच्छे स्वास्थ्य के लिए शारीरिक क्रियाएं अति आवश्यक है। एक शिक्षक को चाहिए कि वह बच्चों को शारीरिक क्रियाओं की ओर प्रेरित करे, क्योंकि इनसे अनेक लाभ मिलते हैं, हृदय रोगों के खतरे में कमी, मोटापा में कमी, अस्थियाँ मजबूत होती हैं, आत्मविश्वास व आत्म- अनुशासन आता हैं, अवसाद (depression) व तनाव में कमी व शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य अच्छा होता है। इसलिए शिक्षक को बच्चों के लिए शारीरिक क्रियाओं पर विशेष बल देना चाहिए ताकि वे स्वस्थ नागरिक बनकर राष्ट्र की उन्नति में अपना बहुमूल्य योगदान दे सकें।

## विद्यालयी स्वास्थ्य कार्यक्रम
## (School Health Programmes)

**विद्यालयी स्वास्थ्य कार्यक्रम का अर्थ (Meaning of School Health Programme)** - विद्यालयी स्वास्थ्य कार्यक्रम का अर्थ विद्यालय के उस कार्यक्रम से हैं जिसके द्वारा विद्यार्थियों और विद्यालय के नियोगी वर्ग (Staff) के स्वास्थ्य को न केवल बनाए रखा जाता हैं, बल्कि उनमें वृद्धि भी की जाती है। विद्यालयी स्वास्थ्य कार्यक्रम का अभिप्राय उस मिश्रित कार्यक्रम से है जिसके अंतर्गत स्वास्थ्य सेवाएँ, स्वास्थ्यप्रद विद्यालयी वातावरण और स्वास्थ्य निर्देशन की सहायता से विद्यार्थियों और नियोगी वर्ग के स्वास्थ्य में वृद्धि की जाती है।

प्रत्येक विद्यालय से यह आशा की जाती है कि वह विद्यार्थियों के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं भावनात्मक स्वास्थ्य से सम्बन्धित सुविधाएँ प्रदान करे। पूर्ण विद्यालयी स्वास्थ्य कार्यक्रम तीन मुख्य पक्षों के चारों ओर घूमता है, जिनका वर्णन नीचे किया गया है:-

1. **स्वास्थ्यप्रद विद्यालयी वातावरण (Healthful school environment)** - स्वास्थ्यप्रद विद्यालयी वातावरण का सम्बन्ध विद्यालय के वातावरण से है। विद्यालय का सारा क्रिया- कलाप स्वस्थ एवं स्वच्छ दशाओं में होना चाहिए। कक्षाओं के सभी कमरों में स्वस्थ वातावरण होना चाहिए। कमरे हवादार होने चाहिए।

2. **स्वास्थ्य निर्देशन (Health instruction)** - विद्यालयी स्वास्थ्य कार्यक्रम का यह पक्ष विद्यार्थियों का स्वास्थ्य में वृद्धि करने व स्वास्थ्य को बनाए रखने के विषय में सूचनाएं तथा निर्देश प्रदान करता है। इसमें सफाई, स्वच्छता, पोषण, मनोरंजन, व्यायाम, आराम, निद्रा, शरीर रचना व शरीर- क्रिया विज्ञान तथा प्राथमिक चिकित्सा आदि के विषय में विद्यार्थियों को निर्देश दिए जाते हैं।

3. **स्वास्थ्य सेवाएं (Health Services)** - स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करना विद्यालयी स्वास्थ्य कार्यक्रम का मुख्य कार्य है। इसके अंतर्गत विद्यार्थियों की चिकित्सा- जांच, चिकित्सा जांच का रिकार्ड तैयार करना, टीकाकरण, निरोधकता और संकटकालीन- प्राथमिक चिकित्सा आदि सेवाएं प्रदान की जाती है।

यदि उपरलिखित विद्यालयी स्वास्थ्य कार्यक्रम के विभिन्न पक्षों पर बल दिया जाए तो विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास भली- भांति किया जा सकता है। ये विद्यार्थी में अच्छे नागरिक बनकर राष्ट्र के उद्यान में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। ऐसे नागरिकों पर हम वास्तव में , गर्व कर सकते हैं।

**प्रश्न-5. शारीरिक शिक्षा से आप क्या समझते हैं? शारीरिक शिक्षा से सम्बन्धित विभिन्न भ्रान्तियाँ क्या-क्या हैं? विस्तार से चर्चा करें।**

**What do you understand by Physical Education? What are different Misconceptions related to physical education? Discuss in detail.**

**उत्तर - शारीरिक शिक्षा की अवधारणा (Concept of Physical Education)**

संसार में लोगों के लिए शारीरिक शिक्षा की धारणा नई नहीं हैं। वास्तव में, शारीरिक शिक्षा बहुत प्राचीन काल से ही मौजूद थी। यद्यपि पुराने समय मे इसका प्रयोग विभिन्न रूपों में किया जाता था। अलग-अलग व्यक्तियों के लिए इसका अर्थ भी भिन्न- भिन्न था। वास्तव में, "शारीरिक शिक्षा" शब्द कठिन और विस्तृत आधार वाला है। इसमें कई विचारधाराएं शामिल है। आरम्भ में "शारीरिक शिक्षा" शब्द का प्रयोग शारीरिक क्रियाओं के लिए किया जाता था, क्योंकि शारीरिक शिक्षा लोगों के जीवित रहने के लिए आवश्यक थी। लेकिन शारीरिक शिक्षा पर सबसे अधिक बल पुराने समय से यूनान में ही दिया गया। सुकरात, अरस्तू और प्लेटो जैसे दार्शनिकों के विचार थे कि शारीरिक प्रशिक्षण युवाओं के लिए अत्यन्त आवश्यक है। प्राचीन काल में भारतवर्ष में भी शारीरिक क्रियाएं लोगों के जीवन का अभिन्न अंग थी। इस प्रकार भिन्न - भिन्न सभ्यताओं में शारीरिक शिक्षा का अर्थ भी बदलता गया। सामान्यतया, शारीरिक शिक्षा को सही अर्थों में नहीं समझा गया। किसी का यह विचार था कि शारीरिक शिक्षा वह है जो शारीरिक शास्त्री करते हैं। कई बार इसे शारीरिक प्रशिक्षण, खेल, शरीर संस्कृति, स्वास्थ्य शिक्षा और मनोरंजन समझा गया। लेकिन वास्तव में, शारीरिक शिक्षा इन शब्दों से कहीं अधिक है।

शारीरिक शिक्षा को निम्नलिखित परिभाषाएं काफी सीमा तक स्पष्ट करती हैं -

**चार्ल्स ए. बूचर के अनुसार,** " शारीरिक शिक्षा शिक्षा-पद्धति का एक अभिन्न अंग हैं, जिसका उद्देश्य नागरिकों को शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक (Emotional) तथा सामाजिक रूप से शारीरिक गतिविधियों के माध्यम से, जो गतिविधियां उनके परिणामों को दृष्टिगत रखकर चुनी गई हों, सक्षम बनाना हैं।"

(An integral part of total education process which has its aim - the development of physically, mentally, emotionally and socially fit citizen through the medium of physical activities which have been selected with a view to realising these outcomes.)

**- Charles A bucher**

**ओवरटयूफर के अनुसार,** "शारीरिक शिक्षा उन अनुभवों का सामूहिक प्रभाव है जो शारीरिक क्रियाओं द्वारा व्यक्ति को प्राप्त होते हैं।"

(Physical Education is the sum of those experiences which come to the individual through movements.) **- Oberteuffer**

**कैसिडी के अनुसार,** " शारीरिक क्रियाओं पर केन्द्रित अनुभवों द्वारा जो परिवर्तन मानव में आते हैं, वे ही शारीरिक शिक्षा कहलाते हैं।"

(Physical education is the sum of changes in the individual caused by experiences centering motor activities.) **- Cassidy**

**भारतीय शारीरिक शिक्षा तथा मनोरंजन के केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड के अनुसार,** "शारीरिक शिक्षा, शिक्षा ही है। यह वह शिक्षा है जो बच्चों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व तथा उसकी शारीरिक प्रक्रियाओं द्वारा उनके शरीर, मन एवं आत्मा के पूर्ण रूपेण विकास हेतु दी जाती है।"

(Physical Education is education. it is education through physical activities for the development of the total personality of the child to its fullness and perfection in body, mind and spirit. - Central advisory board of physical education and recreation)

## शारीरिक शिक्षा के बारे में भ्रान्तियां या भ्रामक धारणाएं
## (Misconceptions about Physical Education)

वर्तमान समय में भारतीय समाज में शारीरिक शिक्षा के बारे में अनेक गलत/भ्रमक धारणाएँ विद्यमान है। यहाँ पर अधिकतर व्यक्ति ऐसे हैं जो शारीरिक शिक्षा के अर्थ को भी नहीं जानते। कुछ व्यक्ति इसको केवल शारीरिक प्रशिक्षण के नाम से जानते हैं। कुछ व्यक्ति इसे केवल शारीरिक संस्कृति ही समझते है। कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं जो यह सोचते हैं कि शारीरिक शिक्षा खेल-कूद को ही कहते हैं। कुछ व्यक्तियों की यह धारणा है कि शारीरिक शिक्षा, बॉडी बिल्डिंग (Body building) ही है जो कि भार प्रशिक्षण के व्यायामों की मदद से की जाती है। इसका अर्थ यह है कि शारीरिक शिक्षा के अर्थ के बारे में भिन्न- भिन्न व्यक्तियों के भिन्न-भिन्न विचार है। वास्तव में, भिन्न- भिन्न विचारों के कारण ही शारीरिक शिक्षा के बारे में गलत/भ्रामक धारणाएं हमारे समाज में फैली हुई हैं। ऐसी ही कुछ भ्रामक धारणाओं का वर्णन निम्नलिखित हैं -

1. **समय का सदुपयोग (Misuse of time)** - बहुत से व्यक्तियों की यह धारणा है कि खेल-कूद में भाग लेकर समय का दुरूपयोग करना है। उनके अनुसार शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रमों में केवल समय का सदुपयोग होता है। इसी के परिणामस्वरूप बहुत से माता-पिता अपने बच्चों को शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए नहीं भेजते। ऐसे माता-पिता खेल-कूद की अपेक्षा पढ़ाई प अत्यधिक बल देते हैं। लेकिन वास्तव में, इस प्रकार की धारणा पूर्णतया गलत है। सच्चाई तो यह है कि शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रमों में भाग लेने से बच्चों की उचित वृद्धि व विकास होता है। वे अधिक स्वस्थ एवं हष्ट- पुष्ट होते हैं। ऐसे स्वस्थ बच्चे एक स्वस्थ राष्ट्र के निर्माण में अपना बहुमूल्य योगदान देते हैं।
2. **शारीरिक शिक्षा केवल खेलना है (Physical Education is only to play)** - बहुत से व्यक्तियों की यह भी एक भ्रामक धारणा है कि शारीरिक शिक्षा केवल खेलकूद हैं, इसके

अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। वास्तव में, खेलकूद शारीरिक शिक्षा का एक भाग है, जबकि शारीरिक शिक्षा के अन्तर्गत अन्य विषय भी होते है, जैसे- खेल जीव- यान्त्रिक (Sports Biomechanics), अनुसंधान क्रिया पद्धति (Research methodology), खेल चिकित्सा विज्ञान (Sports Medicine), खेल मनोविज्ञान, खेल समाज शास्त्र, शरीर रचना व क्रिया विज्ञान आदि। वास्तव में, बच्चे के सर्वांगीण विकास में खेल- कूद भी अपना महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। इनमें भाग लेने से पूर्ण व्यक्तित्व का विकास होता है। शारीरिक शिक्षा को केवल खेलकूद समझने वाले व्यक्ति यह बात क्यों भूल जाते हैं कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन वास करता है। ऐसे व्यक्ति यह भी भूल जाते हैं कि स्वस्थ शरीर आत्मा का अतिथि गृह होता है तथा दुर्बल शरीर आत्मा का कारागृह। सामान्यतया ऐसा देखा जाता है कि ऐसे व्यक्ति, शारीरिक क्रियाओं का वास्तविक मूल्य केवल तभी समझ पाते हैं। जब वे स्वयं चालीस वर्ष की आयु पार कर चुके होते हैं। फिर वे भी शारीरिक व्यायाम करना व सैर करना प्रारम्भ कर देते हैं, जबकि अपने बच्चों को शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रमों से दूर रखना चाहते हैं।

3. **अनुशासन को बिगाड़ती है (Spoils Discipline)** - शारीरिक शिक्षा के बारे में समाज में यह भी एक गलत धारणा व्याप्त है कि यह शिक्षा बच्चों में अभद्र व अनुशासन भंग करने वाले व्यवहार को जन्म देती है। वास्तव में, खेलों में भाग लेने वाले बच्चों का व्यवहार अनुशासित होता है, क्योंकि खेलों में अनुशासित रहना पड़ता है। खेलों के क्षेत्र में एक प्रसिद्ध नारा हैं कि "नियमों का पालन करो या बाहर हो जाओ" (Obey the rules or get out) इसी प्रकार यह भी कहा जाता है कि "खेलों के लिए रूको और न्यायालयों से दूर रहो" (Stay in courts, stay out of courts)। बच्चे केवल खेल मैदान में ही अनुशासन नहीं रखते, अपितु वास्तविक जीवन में भी अनुशासित रहते हैं। इसलिए यह एक गलत धारणा है कि शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रमों में भाग लेने वाले बच्चे अनुशासन भंग करते हैं।

4. **धन का अपव्यय (Wastage of money)** - शारीरिक शिक्षा के बारे में यह भी एक गलत धारणा है कि इसमें धन का अपव्यय होता है। वास्तव में, शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रम देश की अर्थव्यवस्था को ऊपर उठाने में सहायक होते हैं। इथोपिया व कीनिया की अर्थव्यवस्था को ऊपर उठाने में खेलकूद काफी सहायक है। आजकल खेलकूद एक बड़े व्यवसाय के रूप में उभर का सामने आ रहा है। अच्छे खिलाड़ी खेलकूद में भाग लेकर काफी धन अर्जित कर रहे हैं। भारतवर्ष में क्रिकेट के खिलाड़ी पैसा कमा रहे हैं। इसलिए यह धारणा भी गलत है कि इसमें धन का अपव्यय होता है, अपितु यह क्षेत्र धन अर्जित करने का एक अच्छा साधन बन चुका है।

5. **व्यावसायिक अवसरों की कमी (Lack of career opportunities)** - बहुत से व्यक्तियों की यह धारणा है कि शारीरिक शिक्षा के क्षेत्र में व्यावसायिक अवसरों की काफी कमी है। कुछ सीमा तक उनकी यह सोच या विचार उपयुक्त हैं, लेकिन अब शारीरिक शिक्षा के क्षेत्र में व्यावसायिक अवसर तेजी से बढ़ रहे है। अब व्यावसायिक अवसर केवल शिक्षण व प्रशिक्षण तक ही सीमित नहीं हैं, अपितु शारीरिक शिक्षा के अन्य क्षेत्रों में भी दिन- प्रतिदिन बढ़ रहे हैं। उदाहरण के लिए फिटनेस के क्षेत्र में, स्पॉज (Spas) में, हैल्थ क्लबस में, खेल प्रबंधन में, स्पोर्ट्स मीडिया व खेल चिकित्सा आदि में व्यवसाय क अवसर बढ़ रहे हैं।





6. **शारीरिक शिक्षा, शारीरिक विकास में सहायता करती हैं, मानसिक विकास में नहीं (Physical Education helps in physical development and not in mental development)** - बहुत व्यक्तियों की यह धारणा है कि शारीरिक शिक्षा बच्चों का शारीरिक विकास तो करती हैं, लेकिन मानसिक विकास नहीं करती। लेकिन वास्तविकता यह है कि शारीरिक शिक्षा शारीरिक विकास तो करती ही हैं, साथ ही मानसिक विकास में भी सहायक हैं। वास्तव में, हमें मॉण्टेग्यू के विचार नहीं भूलने चाहिए। उसके अनुसार, "शारीरिक शिक्षा न तो आत्मा का और न ही शरीर का अपितु पूरे व्यक्ति का प्रशिक्षण करती है।" इसके अतिरिक्त जर्मनी, रूस, संयुक्त राज्य अमेरिका में ऐसे काफी अनुसंधान हो चुके हैं, जो स्पष्टतया यह दर्शाते हैं कि शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रमों में भाग लेने वालों की बुद्धिमता (Intelligence) भाग न लेने वालों की अपेक्षा अधिक होती है। अतः यह एक गलत धारणा है कि शारीरिक शिक्षा मानसिक विकास नहीं करती।

7. **ड्रिल (Drill)** - आज भी बहुत से व्यक्ति ऐसे हैं जो शारीरिक शिक्षा को ड्रिल ही समझते हैं। यह बात उस समय और भी अधिक स्पष्ट हो जाती है, जब आम शिक्षक वर्ग भी शारीरिक शिक्षा को ड्रिल समझता है। वास्तव में, 'ड्रिल' शब्द भी सेना से सम्बन्धित है। इस शब्द का वास्तविक अर्थ किसी कार्य को सुचारू व व्यवस्थित ढंग से करने से है, जैसा कि सेना में आमतौर पर किया जाता है। प्रायः ड्रिल, संगीत की लय व ताल पर की जाती है। स्कूल स्तर पर सामान्यतया ड्रिल कराई जाती हैं, जिसे 'मास ड्रिल' कहते हैं। शरीर को सौष्ठव प्रदान करता है लेकिन इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि Body Building ही शारीरिक शिक्षा होती है। वास्तव में, Body Building एक Sports होता है।

उपरलिखित शारीरिक शिक्षा की वे गलत धाराणाएं हैं जो आज भी हमारे समाज में विद्यमान है। इस कारणवश शारीरिक शिक्षा को आज भी हमारे देश में उचित स्थान नहीं मिल पाया है। शारीरिक शिक्षा के वास्तविक अर्थ से व्यक्ति अनभिज्ञ हैं। स्कूल और महाविद्यालय के शिक्षक भी शारीरिक शिक्षा के वास्तविक अर्थ को नहीं जानते। इसलिए अशिक्षित व्यक्ति के बारे में तो सोचना ही व्यर्थ है। समाज में फैली इन्हीं गलत धारणाओं के कारण शारीरिक शिक्षा का स्तर दयनीय होता जा रहा है। इसी कारण व्यक्ति अपने बच्चों को शारीरिक शिक्षा कार्यक्रमों से प्रायः दूर रखना चाहते हैं। 'पढ़ोगे, लिखोगे बनोगे नवाब, जो खेलोगे, कूदोगे होगे खराब" एक ऐसी ही कहावत है जो शारीरिक शिक्षा के लिए एक नासूर बन चुकी है। ऐसा प्रतीत होता है कि समाज की विचारधारा ही ऐसी बन चुकी है। जहाँ पर समाज में इस प्रकार की धारणाएं हों, वहां पर शारीरिक शिक्षा की जड़े नहीं फैल सकती। लेकिन समाज में धीरे- धीरे एक परिवर्तन आने लगा है। व्यक्ति स्वयं को फिट रखना चाहते है। इसके फलस्वरूप शारीरिक शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण में बदलाव होने लगा है।

वास्तव में, शारीरिक शिक्षा का लक्ष्य, व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करना हैं, जैसे- शारीरिक, मानसिक सामाजिक, भावनात्मक व आध्यात्मिक विकास। इस लक्ष्य को समक्ष रखकर हमें शारीरिक शिक्षा के बारे में गलत धारणाओं को निकालना होगा, क्योंकि यही समय की आवश्यकता है।

**प्रश्न-6. शारीरिक शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य क्या हैं? विस्तार से चर्चा करें।**

**What are aim and objectives of physical education? Discuss in detail.**

**उत्तर - शारीरिक शिक्षा का लक्ष्य एवं उद्देश्य**

**(Aim and Objectives of Physical Education)**

शारीरिक शिक्षा का लक्ष्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करना है अथवा यह कहा जा सकता है कि पूर्ण रूप से जीना ही शारीरिक शिक्षा का लक्ष्य है। वास्तव में, ऐसा प्रतीत होता है कि शारीरिक शिक्षा के इस अत्यन्त शिखर रूपी लक्ष्य को प्राप्त करना आसान कार्य नहीं है। सामान्यतया शारीरिक शिक्षा के इस लक्ष्य को सीढ़ी दर सीढ़ी प्राप्त किया जा सकता है। यही सीढ़ियां वास्तव में शारीरिक शिक्षा के उद्देश्य होते हैं, जिनकी सहायता से शारीरिक शिक्षा के लक्ष्य की प्राप्ति होती है। इसलिए यह कहा गया है कि लक्ष्य एक होता है लेकिन उद्देश्य अनेक हो सकते हैं।

सुप्रसिद्ध शारीरिक शिक्षाशास्त्री जे.एफ. विलियम्स का कहना है कि, "शारीरिक शिक्षा का उद्देश्य एक कुशल एवं योग्य नेतृत्व देना तथा ऐसी सुविधाएं प्रदान करना है जो किसी एक व्यक्ति या समुदाय को कार्य करने का अवसर दें और वे सभी क्रियाओं में शारीरिक रूप से तथा सम्पूर्ण मानसिक रूप से उतेजक एवं सन्तोषजनक और सामाजिक रूप से निपुण हों। उनके अनुसार व्यक्ति के लिए केवल उन्हीं क्रियाओं का चयन करना चाहिए, जो शारीरिक रूप से लाभदायक हों।"

मिनिस्ट्री ऑफ एजुकेशन के अनुसार, "शारीरिक शिक्षा का लक्ष्य प्रत्येक बालक को शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक रूप से तन्दुरूस्त बनाना और उसमे व्यक्तिगत व सामाजिक गुणों का विकास करना होना चाहिए ताकि वह लोगों के साथ खुशी से रह सके और उसे एक अच्छा नागरिक बना सके।"

("The aim of physical education must be to make every child physically, mentally and emotionally fit and also to develop in him such personal and social qualities as will help him to live happily with others and build him up a good citizen.")

- Ministry of Education in National Planning of Physical with other education and recreation

1. **शारीरिक विकास (Physical Development)** - शारीरिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य शारीरिक विकास है। यह हमारे शारीरिक संस्थाओं, जैसे- रक्त-संचार, श्वसन-संस्थान, स्नायु प्रणाली, मांसपेशीय संस्थान और पाचन- प्रणाली इत्यादि का विकास करती है। शारीरिक शिक्षा शारीरिक क्रियाओं से सम्बन्धित है, और जब हम शारीरिक क्रियाएं करते है तो उनका हमारे शरीर का विभिन्न संस्थानों पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। इन संस्थाओं के आकार, रूप और क्षमता में भी विकास होता है जबकि यह कहा गया है कि शारीरिक विकास शारीरिक शिक्षा के उद्देश्यों द्वारा सम्भव है। यह एक अच्छा एवं स्वस्थ शरीर बनाने में भी सहायक है, जो एक बहुमूल्य निधि है और राष्ट्र निर्माण में सहायक है। यदि हमारे संस्थान स्वस्थ होगें तो हम उचित रूप से कार्य करेंगे।

2. **मानसिक विकास (Mental Development)** - यह उद्देश्य व्यक्ति के मानसिक विकास से सम्बन्धित है। शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रमों में कई ऐसी क्रियाएं होनी चाहिएं जो मस्तिष्क को





जागरूक करें ध्यानमग्न बनाएं और सही मापदण्ड दें। वास्तव में, यह द्वि-मार्गीय प्रक्रिया है। शारीरिक क्रियाएँ मस्तिष्क तेज बनाती हैं और दूसरी तरफ इन क्रियाओं के प्रदर्शन में मस्तिष्क की एकाग्रता जरूरी है। इन क्रियाओं सहित शारीरिक शिक्षा भी अन्य विषयों की तरह एक विषय बन गया है। इसके अंतर्गत अनेक उप- विषय, जैसे - खेल, मनोविज्ञान, खेल दर्शनशास्त्र, खेल जीव यांत्रिकी, खेल चिकित्सा शास्त्र, स्वास्थ्य शिक्षा, शरीर क्रिया विज्ञान व शरीर रचना विज्ञान आदि होते हैं। इस तरह, मानसिक विकास ने अपना स्थान लिया। इन विभिन्न क्रियाओं में भाग लेकर व्यक्ति निष्कर्ष निकालना सीख जाता है। खेल के दौरान कई प्रकार की स्थितियाँ आती है, जिनमें खिलाड़ी अपना स्वयं का स्वतंत्र निर्णय स्थिति अनुसार लेता है। इस तरह उसका मानसिक विकास होता है।

3. **सामाजिक विकास (Social Development)** - इन उद्देश्य का सम्बन्ध सामाजिक गुणों के विकास से है जो कि जीवन में अच्छे समायोजन के लिए जरूरी है। शारीरिक शिक्षा का कार्यक्रम इन गुणों को बढ़ाने के लिए कई रास्ते बताता है। शारीरिक शिक्षा मनुष्य में नेतृत्व के गुणों का विकास करती है। शारीरिक क्रियाओं द्वारा भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के खिलाड़ियों को एक-दूसरे के निकट आने का अवसर मिलता है और वे परिस्थितियों के अनुसार समायोजन करते हैं। इस प्रकार, उनमें मित्रता की भावना विकसित होती है। यह सहयोग, सम्मान, अच्छा खेल, संयम, खेलने की भावना, सांत्वना इत्यादि गुणों को सीखने का अच्छा स्त्रोत है। इन गुणों द्वारा शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रम विकसित होते हैं और समाज में एक अच्छे तथा स्वस्थ वातावरण का निर्माण होता है और इस तरह का वातावरण शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रमों से ही सम्भव है।

4. **नाड़ी-पेशीय समन्वय या तालमेल (Neuro-Muscular Co-ordination)** - यह उद्देश्य नाड़ी संस्थान तथा मांसपेशिया संस्थानों में समन्वय स्थापित करता है। शारीरिक शिक्षा की ये क्रियाएँ नाड़ी संस्थान व मांसपेशीय संस्थान के मध्य समन्वय स्थापित करने के लिए अवसर देती है। खेलों की विभिन्न स्थितियों में हमारा नाड़ी संस्थान व मांसपेशीय संस्थान विकसित होता है। अच्छा नाड़ी संस्थान शारीरिक क्रियाओं की थकान दूर करने में सहायता करता है। यदि हमारा नाड़ी संस्थान व मांसपेशीय संस्थान अच्छा होगा तो हमारी शारीरिक ऊर्जा का उचित प्रयोग होगा। शारीरिक क्रियाएं करने से हमारा प्रतिक्रिया समय (Reaction Time) कम हो जाता है। शारीरिक क्रियाएं हमारे शरीर को उचित गति देती है। इस तरह शारीरिक क्रियाओं द्वारा नाड़ी संस्थान व मांसपेशीय संस्थान कुशल बनता है।

5. **भावनात्मक विकास (Emotional Development)** - शारीरिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति का भावनात्मक व संवेगात्मक विकास करना भी है। व्यक्ति में अनेक भावनाएं या संवेग होते हैं, जैसे- खुशी, आशा, ईर्ष्या, घृणा, डर, दुख, क्रोध, आश्चर्य, कामुकता, एकाकीपन आदि। इन संवेगों के ऊपर यदि व्यक्ति का उचित नियंत्रण ने हो तो वह असामान्य व अनियंत्रित हो जाता है। संवेग व्यक्ति के लिए महत्वपूर्ण होते हैं, लेकिन इनकी अधिकता खराब होती है। शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रम इन संवेगों को विकसित भी करते हैं तथा इनके ऊपर नियंत्रण करना भी सिखाते हैं। शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रम में भाग लेकर व्यक्ति अपनी भावनाओं पर नियंत्रण करने लगते हैं।

**6. स्वास्थ्य का विकास (Development of Health)** - शारीरिक शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति
स्वास्थ्य का विकास करना भी है। यह व्यक्ति की स्वास्थ्य सम्बन्धी आदतों का विकास करती
संक्रामक रोगों से बचाव की शिक्षा भी प्रदान करती है। मनोरंजन के लिए भी अनेक कार्यक्र
होते हैं। आधुनिक युग में शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रम चिन्ता, दबाव व तनाव को काफी
तक कम करते हैं ताकि व्यक्तियों के स्वास्थ्य को उन्नत किया जा सकें।

**प्रश्न-7. शारीरिक शिक्षा एवं सामान्य शिक्षा में क्या सम्बन्ध है? चर्चा करें।**
**What is relationship between Physical Education and Genera Education? Discuss.**

**उत्तर - शारीरिक शिक्षा व सामान्य शिक्षा में सम्बन्ध**
**(Relationship Between Physical Education and General Education)**

समय के साथ- साथ जीवन के प्रत्येक पहलू के बारे में हमारी धारणाओं में भी व्यापक रूप
परिवर्तन हो रहा है। इसी परिवर्तन के परिणामस्वरूप आज शारीरिक शिक्षा, सामान्य शिक्षा
अभिन्न अंग बन चुकी है। पुराने समय में सामान्य शिक्षा का उद्देश्य, व्यक्ति का मानसिक विका
करना था, जबकि शारीरिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति का केवल शारीरिक विकास करना
समझा जाता था। लेकिन आज, शारीरिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य केवल शारीरिक विकास करना
नहीं अपितु सर्वांगीण विकास के उद्देश्य को प्राप्त करने हेतु दोनों प्रकार की शिक्षाओं का ढंग अल
अलग है। आधुनिक अनुबंधन अध्ययनों से निष्कर्ष निकाला है कि मन और शरीर का अध्ययन
अलग-अलग नहीं किया जा सकता, क्योंकि ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

विभिन्न शिक्षा-शास्त्रियों ने शारीरिक शिक्षा तथा सामान्य शिक्षा के सम्बन्ध में निम्नलिखित विच
व्यक्त किए हैं -

**ले. मैस्ट्रे के अनुसार,** "शारीरिक शिक्षा का वह रूप है जो शारीरिक क्रियाओं के माध्यम से मनु
के पूर्ण विकास एवं प्रशिक्षण में पूर्ण योगदान देती है।"

**जे. आर. शर्मन के अनुसार,** "शारीरिक शिक्षा, शिक्षा का वह अंग है जो मानव-शरीर की हरक
द्वारा संचालित किया जाता है और इसके फलस्वरूप व्यक्ति के व्यवहार का ढाँचा परिवर्तित हो ज
है।"

**जे. बी. नैश के अनुसार,** "हम शिक्षा के टुकड़ों में खंडित नहीं कर सकते और न ही इस
की आशा कर सकते हैं कि प्रत्येक खंड के अलग-अलग परिणाम प्राप्त होंगे।"

**भारतीय शारीरिक शिक्षा तथा मनोरंजन के केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड के अनुसार,** "शारीरिक शि
शिक्षा शिक्षा ही है। यह वह शिक्षा है जो बच्चों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व तथा उसकी शारीरिक प्रक्रिया
द्वारा उनके शरीर, मन एवं आत्मा के पूर्णरूपेण विकास हेतु दी जाती है।"

उपरोक्त कथनों से यह निष्कर्ष निकलता है कि शारीरिक शिक्षा, सामान्य शिक्षा का अभिन्न अंग
वास्तव में, शारीरिक शिक्षा केवल शारीरिक क्रियाएं ही नहीं हैं, अपितु इससे कहीं अधिक हैं। सामा
शिक्षा तथा शारीरिक शिक्षा दोनों ही एक लक्ष्य को प्राप्त करती हैं। अतः यह कहा जा सकता है
शारीरिक शिक्षा तथा सामान्य शिक्षा के बीच घनिष्ट सम्बन्ध है।





**प्रश्न-8. आसन से आप क्या समझे हैं? इसके महत्वों का वर्णन करें।**
**What do you understand by Posture? Describe its values.**

**उत्तर - आसन की धारणा ( Concept of Posture)**

अच्छे आसन से अभिप्राय, व्यक्ति के शरीर के सही एवं उचित संतुलन से है। प्रत्येक व्यक्ति विभिन्न क्रियाएं करता हैं, जैसे- खड़े होना, बैठना, चलना, लिखना, पढ़ना, लेटना आदि। इस प्रकार के कार्यों को करते हुए व्यक्ति के शरीर का संतुलन उचित होना चाहिए। वास्तव में, व्यक्ति का पहला प्रभाव, उसके खड़े होने, बैठने व चलने के ढंग पर निर्भर करता है। एक खड़े हुए व्यक्ति का अच्छा आसन उस स्थिति में कहा जा सकता है जब उसके शरीर का भार उसके दोनों पैरों पर बराबर हो तथा ऐसा करने में उसे कोई विशेष केशिश न करनी पड़े। इसके साथ- साथ उसका शरीर एक सीधी रेखा में भी दिखाई पड़ना चाहिए। इस दिशा में व्यक्ति के सभी अंग कुशलतापूर्वक अपना कार्य करते हैं। आसन गतिशील होता है अर्थात् यह कार्य के अनुसार बदलता रहता है।

एवेरी के मतानुसार, "एक अच्छा आसन वह है जिसमें शरीर संतुलित हो ताकि कम से कम थकावट उत्पन्न हो।"

(Good posture is one, in which the body is so balanced as to produce least fatigue.)

इसका अर्थ यह है कि अच्छा आसन, शरीर की ऐसी अवस्था है जिसको बनाए रखने में कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता। ऐसी अवस्था में थकावट भी बहुत कम होती है।

गुरूत्वाकर्षण शक्ति (Gravitational Force) का प्रभाव, प्रत्येक व्यक्ति के शरीर पर लगातार पड़ता रहता है। जब व्यक्ति सोया हुआ होता है उस समय भी यह शक्ति उसको प्रभावित करती रहती है। इस शक्ति के फलस्वरूप कोमल तन्तुओं पर दबाव पड़ता रहता है जिसके कारण व्यक्ति करवटें बदलता है। यद्यपि कुछ समय के लिए ऐसी अवस्था में शरीर को रखा जा सकता है जिसमें शरीर पर गुरूत्वाकर्षण के प्रभाव को शून्य किया जा सकता है। लेकिन लम्बी अवधि के लिए शरीर को ऐसी अवस्था में रख पाना संभव नहीं हो पाता। प्रत्येक व्यक्ति, उचित आसन बनाए रखने के लिए हर पल गुरूत्वाकर्षण के विपरित कार्य करने वाली मांसपेशियों में शक्ति व सहनशक्ति (Strength and Endurance) में कमी होती है तो शरीर में कई प्रकार के नकारात्मक परिवर्तन हो जाते हैं। उदाहरण के तौर पर यह कहा जा सकता है कि पद किसी व्यक्ति की पीठ पर मांसपेशियां कमजोर होती हैं तो उसका शरीर आगे की ओर झुकने लगता है। लम्बी अवधि में ऐसे परिवर्तन न केवल अस्थि संस्थान पर प्रभाव डालते हैं बल्कि मांसपेशिया संस्थान पर भी ये प्रभाव स्पष्ट रूप से देखें जा सकते हैं। मांसपेशियों में शक्ति व सहनशक्ति का विकास तथा जोड़ों में लचक का विकास, कार्य-कुशलता में वृद्धि के लिए परम आवश्यक है।

**मोरिसन (Morrison)** का कथन है कि आसन के बारे में कोई निश्चित आकार या स्तर बनाना असंभव है। अतः अब यह स्वीकार किया जाता है कि मुख्य तौर पर, अच्छा आसन व्यक्ति के शारीरिक ढांचे पर निर्भर करता है। वास्तव में एक अच्छे आसन का नियम सभी व्यक्तियों के ऊपर लागू नहीं किया जा सकता लेकिन फिर भी कुछ सामान्य विशेषताएं होती हैं जिनका विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए। यदि हम इन विशेषताओं का ध्यान रखें तो शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों पर

कम-से कम दबाव पड़ता है तथा हम अधिक समय तक संतुलित भी रह सकते हैं।

1. **खड़े होने के उचित आसन (Correct Posture of Standing)** - सभी व्यक्ति खड़े होने के लिए भिन्न-भिन्न आसनों का प्रयोग करते हैं। खड़े होने की स्थिति में दोनों पैरों की एड़ियां आपस में मिली होनी चाहिए। पैरों के अंगूठों बीच की दूरी आपस में 3 से 4 इंच होनी चाहिए। शरीर तना हुआ, घुटने सीधे, ठोड़ी अंदर की तरफ, छाती बाहर की तरफ, पेट अंदर तथा दोनों पैरों पर बराबर भार होना चाहिए। इस स्थिति में पूरा शरीर संतुलित होना चाहिए। गुरूत्व रेखा, सिर, रीढ़ की हड्डी तथा एड़ियों में से सीधी गुजरनी चाहिए। ऐसी स्थिति में मांसपेशियों पर दबाव नहीं पड़ता है।

2. **बैठने का उचित आसन (Correct Posture of Sitting)** - जब हम कुर्सी पर बैठते हैं तो नितंब कुर्सी के पिछले वाले भाग से सटे हुए होने चाहिए। सिर, रीढ़ की हड्डी, कंधे और नितंब एक सीधी रेखा में होने चाहिए। पैर लटके हुए नहीं होने चाहिए, बल्कि जमीन पर टिके होने चाहिए। जाँघें क्षैतिज की अवस्था में रहनी चाहिए। कुर्सी या बेंच की ऊँचाई व्यक्ति के आयु और कद के अनुसार होनी चाहिए ताकि पैरों की स्थिति ठीक रह सके। यदि ऐसे आसन का प्रयोग किया जाता है तो शरीर की अस्थियों व मांसपेशियों पर कम - से कम दबाव पड़ता है तथा थकावट भी कम से कम होती है।

3. **पढ़ने का उचित आसन (Correct Posture of Reading)** - पढ़ने के लिए ऐसे आसन का प्रयोग किया जाना चाहिए, जिससे विद्यार्थियों के शरीर और आँखों पर कम- से कम दबाव पड़े। अतः पुस्तक मेज पर होनी चाहिए। पुस्तक, आँखों से न तो कम दूरी और न ही अधिक दूरी पर होनी चाहिए। किताब से आँखों की दूरी लगभग 30 से.मी. होनी चाहिए। पुस्तक अच्छे प्रकाश में पढ़नी चाहिए। यदि हम उपर्युक्त नियमों का उचित ढंग से पालन नहीं करते हैं तो आंखों की दृष्टि की समस्या उत्पन्न होने लगती है। लिखने के लिए मेज या डेस्क का झुकाव आगे की तरफ होना चाहिए। कभी भी सिर झुका कर नहीं लिखना चाहिए। ऐसा करने से रीढ़ की हड्डी झुक जाती है तथा सिर भारी रहने लगता है।

4. **चलने का उचित आसन (Correct Posture of Walking)** - उचितढंग से चलना हमेशा, कहीं भी, प्रत्येक व्यक्ति द्वारा सराहा जाता है। यह हमारे व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। यदि कोई व्यक्ति सिर झुकाकर चलता है तथा उसके पैर संतुलित नहीं पड़ते हैं तो यह हीन भावना का प्रतीक है। अकड़ कर चलने के आसन को भी उचित आसन नहीं कहा जा सकता। वास्तव में, चलने का अच्छा आसन वह है जिसमें चलते हुए पैरों की रेखाएं, दिशा की रेखा के समानांतर हो। सर्वप्रथम एड़ियां जमीन पर पड़नी चाहिए। उसके बाद शरीर का भार पैर के आगे के भाग पर आना चाहिए अर्थात् एड़ी- पंजा क्रिया होनी चाहिए। व्यक्ति की चाल कुशल एवं गरिमायुक्त होनी चाहिए। पैरों का अंतर समान रहना चाहिए। हाथ सामान्यतया आगे तथा पीछे की ओर जाना चाहिए। चलते समय पैर या घुटने आपस में टकराने नहीं चाहिए। अतः चलने के समय उपर्युक्त बातों का ध्यान रखना चाहिए ताकि व्यक्ति को कम से कम थकावट का अनुभव हो।

5. **लेटने का उचित आसन (Correct lying posture)** - आमतौर पर लेटने के लिए कई प्रकार





के आसनों का प्रयोग किया जाता है। लेकिन पीठ के बल लेटना अधिक उचित होता है। सोने के लिए सामान्य आकार का सिरहाना लेना चाहिए। जिन व्यक्तियों को मेरूरज्जु की समस्या होती है, उनको सख्त बिस्तर पर लेटना चाहिए। लेटने के समय यह ध्यान रखना चाहिए कि श्वसन क्रिया में किसी प्रकार की परेशानी का सामना न करना पड़े।

## आसन का महत्व
## (Value of Posture)

प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व में अच्छे आसन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। संसार के प्रत्येक समाज में अच्छे आसन को हमेशा प्रशंसा की दृष्टि से देखा जाता है। वास्तव में, जीवन के सभी पहलुओं में व्यक्तित्व की अहम् भूमिका होती है। व्यक्ति की कार्य कुशलता एवं योग्यता उसके आसन पर ही निर्भर करती है। व्यक्ति के आसन से यह भली- भांति जाना जा सकता है कि वह जीवन को किस ढंग से जीता है। एक अच्छे व संतुलित आसन के महत्व को निम्नलिखित रूपों में समझा जा सकता है।

1. **आसन (Appearance)** - प्राकृतिक रूप से प्रत्येक व्यक्ति अपना अच्छा आभास चाहता है। विपरीत लिंग की उपस्थिति में तो यह और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। दूसरे व्यक्तियों पर अच्छा प्रभाव डालने के लिए अच्छा आभास का होना अति आवश्यक है। वास्तव में, व्यक्ति का आभास उसके आसन पर निर्भर करता है। हमारा आभास ही दूसरे व्यक्तियों पर अच्छा या बुरा प्रभाव छोड़ता है। अच्छा आभास बनाने के लिए व्यक्ति धन खर्च करने से भी नहीं हिचकिचाते। इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि ऐसे व्यक्ति अपने धन का दुरूपयोग करते है। यदि हम बचपन से ही उचित आसनों का प्रयोग करें तो हमारा आभास भी अच्छा हो जाता है।

2. **गतियों की कुशलता व गरिमा (Grace and Efficiency of Movement)** - खेल-कूद के क्षेत्र में आसन की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका होती है क्योंकि खेल- कूद में अनेक प्रकार की गतिविधियां शामिल होती हैं, जैसे चलना, दौड़ना, कूदना, फेंकना आदि। ये सभी क्रियाएं गतियों की योग्यताओं पर निर्भर करती हैं। एक खिलाड़ी की गति में कुशलता व गरिमा होती है तो खेलों के क्षेत्र में वह ऊँचा स्थान प्राप्त कर सकता है। ऐसे भी बहुत से खेल होते है। जिनमें संतुलन की आवश्यकता होती है। यह संतुलन उन व्यक्तियों में अधिक होता है जिनके आसन अच्छे होते हैं।

3. **शारीरिक पुष्टि (Physical Fitness)** - एक अच्छा जीवन व्यतीत करने के लिए शारीरिक पुष्टि का होना अति आवश्यक है। शारीरिक पुष्टि केवल तभी प्राप्त की जा सकती है जब व्यक्ति का आसन संतुलित हो।

   संतुलन, लचक व सामंजस्य शारीरिक पुष्टि के अभिन्न अंग है। एक खिलाड़ी इन योग्यताओं को केवल तभी प्राप्त कर सकता है जब उसका आसन संतुलित हो।

4. **स्वास्थ्य की दृष्टि से महत्व (Hygienic Value)** - एक अच्छे आसन का होना व्यक्ति के लिए स्वास्थ्यप्रद होता है। अच्छे आसन के फलस्वरूप ही हमारे शरीर के सभी संस्थान कुशलता पूर्वक कार्य करते हैं। व्यक्ति बहुत ही कम रोगग्रस्त होता है।

5. **सामाजिक महत्व (Social Value)** - एक अच्छे आसन का होना, सामाजिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण होता है। जिन व्यक्तियों के आसन बहुत अच्छे होते हैं समाज में उनकी सराहना की जाती है। ऐसे व्यक्ति लोगों के बीच खड़े होने में हिचकिचाहट महसूस नहीं करते। इसके विपरीत जिन व्यक्तियों के आसन अनुचित होते हैं, वे हीन भावना का शिकार हो जाते हैं। ऐसे व्यक्ति सामाजिक कार्यों में भाग लेने से कतराते हैं। इसलिए एक अच्छे आसन का सामाजिक महत्व भी होता है।

6. **आर्थिक महत्व (Economic Value)** - अच्छे आसन का न केवल सामाजिक महत्व होता है, बल्कि आर्थिक महत्व भी होता है। एक अनुचित आसन वाले व्यक्ति की अपेक्षा, एक उचित आसन वाला व्यक्ति कम ऊर्जा का व्यय करता है। वास्तव में, गुरूत्वाकर्षण शक्ति अनुचित आसन वाले व्यक्ति के ऊपर अधिक प्रभाव डालती है। जिस व्यक्ति का आसन अनुचित होता है, उस व्यक्ति को बैठने, खड़े होने और चलने जैसी सामान्य क्रियाओं में भी अधिक ऊर्जा का व्यय करना पड़ता है। इसलिए अच्छे आसन का आर्थिक महत्व भी होता है।

7. **रोगों से बचाव (Prevention from Diseases)** - डॉ. मोशेर के अनुसार, "अनुचित आसन के परिणामस्वरूप, कब्ज, रक्त संचार में रूकावट, चिड़चिड़ापन व थकावट होती है।" वास्तव में, अनुचित आसनों से व्यक्ति के शरीर की कार्य प्रणाली पर बुरा प्रभाव पड़ता है। जिससे कई प्रकार के रोग व्यक्तियों को हो जाते हैं। यदि व्यक्ति का आसन उचित हो तो बहुत से रोगों से बचाव किया जा सकता है।

8. **मानसिक अभिवृति में परिवर्तन (Change in Mental Attitude)** - सामान्यतया आसन व्यक्ति के दृष्टिकोण, खुशी, आत्मविश्वास व संकल्प के ऊपर प्रभाव डालता है। जिस व्यक्ति का आसन अनुचित होता है। वह दुख, चिन्ताओं व तनाव से ग्रस्त होता है जिसके फलस्वरूप उसकी जीवन के प्रति मानसिक अभिवृति में परिवर्तन हो जाता है।

9. **कार्यक्षमता में वृद्धि (Increase in Walking Efficiency)** - जिस व्यक्ति का आसन उचित होता है। उसकी कार्यक्षमता भी अधिक होती है क्योंकि ऐसे व्यक्ति को कम थकावट होती है।

**प्रश्न-9. दोषयुक्त आसनों के कारण क्या-क्या हैं? विस्तार से चर्चा करें।**

**What are causes of poor posture? Discuss in detail.**

**उत्तर - दोषयुक्त आसनों के कारण (Causes of Poor Posture)**

सामान्यतया दोषयुक्त आसनों के अनेक कारण हैं, लेकिन गुरूत्वाकर्षण एक मुख्य कारण है। जब हम खड़े होते हैं, लेटते हैं, बैठते हैं, चलते हैं, दौड़ते हैं या कोई अन्य कार्य करते हैं तो हमारे शरीर पर प्रत्येक पल गुरूत्वाकर्षण शक्ति प्रभाव डालती रहती है। यदि हम इसी प्रकार से गुरूत्वाकर्षण शक्ति के अनुरूप ही हमारा आसन बन जाता है। व्यक्ति के दोषयुक्त आसन के निम्नलिखित कारण हैं :

1. **असंतुलित भोजन (Imbalanced Diet)** - यदि हम असंतुलित भोजन करते हैं तो हमारी अस्थियां और मांसपेशिया कमजोर हो जाती है। कुछ समय क्रियाशील रहने के बाद हमें थकावट महसूस होने लगती हैं, जिसके फलस्वरूप हमारा आसन दोषयुक्त होने लगता है। असंतुलित



भोजन के कारण ही बच्चों का शारीरिक विकास ठीक नहीं हो पाता है तथा उन्हें रिकेट्स व कबूतर जैसी छाती हो जाती है। ऐसा फॉस्फोरस व विटामिन 'डी' की कमी से हो जाता है।

2. **जन्मजात (By Birth)** - दोषयुक्त आसन जन्म से भी हो सकता है। इनमें मुख्यतया पीछे का कूबड़, Club Foot हिप्स का खिसकना।

3. **रोग (Diseases)** - पोलियों, रिकेट्स, अधरंग आदि रोगों से भी दोषयुक्त आसन हो जाते हैं। ये ऐसी बिमारियां है जिनके कारण अस्थियां व मांसपेशिया ठीक प्रकार से कार्य करने में सक्षम नहीं रहती। अतः संतुलित आसन भी खराब होने लगता है।

4. **थकावट (Fatigue)** - यदि कोई व्यक्ति लगातार लम्बी अवधि तक कार्य करता रहे तो उसे थकावट होने लगती है। वह व्यक्ति सुस्त होने लगता है। यदि थकावट की अवस्था में भी वह कार्य करता रहता है तो उसके आसन में परिवर्तन आने लगता है तथा उसका आसन दोषयुक्त होने लगता है।

5. **फैशन (Fashion)** - आधुनिक फैशन व्यक्ति के शरीर की सामान्य क्रियाओं में रूकावट पैदा करता है। फैशन के कारण ही एक बच्चा ठीक ढंग से चल या बैठ नहीं सकता। जब वह कोई कार्य करता है तो उचित या संतुलित आसन रखते हुए वह कार्य नहीं कर पाता। ऐसा बच्चा अपना प्राकृतिक आसन भूल जाता है और दोषयुक्त आसन का प्रयोग करने लगता है। इसी प्रकार तंग व ऊँची एड़ी के जूते बच्चों की चाल में बहुत परिवर्तन कर देते हैं। कपड़े तंग होने के कारण भी शारीरिक कुरूपताएं आ जाती है।

6. **कोमलता व नकल (Delicacy and limitation)** - यह एक आम सत्य है। कि लड़कियाँ विशेषकर लड़कों के सामने, अधिक कोमलता का दिखावा करती हैं। वे इस प्रकार के भावों का प्रदर्शन करती हैं जिससे शारीरिक दोष आ जाते हैं। इसी प्रकार बच्चे जब किसी बूढ़े व्यक्ति के चलने की नकल करते हैं तो उनमें भी शारीरिक दोष आ जाते हैं।

7. **ताजी हवा और प्रकाश की कमी (Lack of fresh Air and Light)** - ताजी हवा और प्रकाश की कमी के कारण भी शरीर में कुरूपताएँ आ जाती है। वास्तव में, ताजी हवा व अच्छे प्रकाश के अभाव में फेफड़े व आँखें खराब हो जाती हैं, जिससे आसन असंतुलित होने लगता हैं।

9. **आराम व निद्रा की कमी (Lack of Rest and Sleep)** - यदि कोई व्यक्ति उचित आराम व निंद्रा नहीं लेता तो कुछ समय के बाद उसका आसन भी दोषयुक्त होने लगता है।

10. **उचित व्यायाम की कमी (Lack of Proper Exercise)** - उचित व्यायाम न करने से आसन दोषयुक्त होने लगता है। अतः व्यायाम को वैज्ञानिक तरीकों से व उचित ढंग से करना चाहिए। यदि गलत ढंग से व्यायाम किया जाता है तो शरीर का अनुचित विकास होता है, जिसके कारण आसन भी अनुचित हो जाता है। व्यायाम करने से पहले हमें वैज्ञानिक पहलुओं की तरफ ध्यान देना चाहिए, ताकि संतुलित आसन बन सके।

11. **जागरूकता की कमी (Lack of Awareness)** - अच्छे आसन के प्रति यदि जागरूकता में कमी है तो आसन दोषयुक्त हो सकता है। यदि हम शारीरिक दोषों के बारे में सचेत नहीं रहते तो हमारे आसन दोषयुक्त होने लगते हैं। अतः हमें अपने आसन के प्रति हमेशा जागरूक रहना

चाहिए।

12. **फर्नीचर का ठीक न होना (Improper Furniture)** - फर्नीचर ठीक न होने से भी व्यक्ति में शारीरिक कुरूपताएँ आ जाती है। सामान्यतया स्कूलों और कॉलेजों में इस प्रकार का ध्यान नहीं रखा जाता। जब भी फर्नीचर बनवाना हो तो विद्यार्थियों की उम्र का विशेष ध्यान रखना चाहिए। बेंच या कुर्सी की ऊँचाई इतनी होनी चाहिए ताकि फर्श के ऊपर दोनों पैर आराम से टिक सकें। डेस्क की ऊँचाई भी विद्यार्थियों की ऊँचाई के अनुसार होनी चाहिए। यदि डेस्क ऊँचाई ठीक न हो तो पढ़ने- लिखने में अनुचित आसन का प्रयोग होने लगता हैं, जिसके फलस्वरूप बच्चों के आसन दोषयुक्त हो जाते हैं।

13. **व्यवसाय (Occupation)** - अधिकतर उद्योगों में इस प्रकार का कार्य किया जाता है कि उनमें कार्य करने वाले व्यक्तियों में केवल एक तरफ की मांसपेशियां ही विकसित होती हैं। उनकी दूसरी तरफ की उंगलियां ठीक प्रकार से विकसित नहीं होतीं, जिसके फलस्वरूप उनमें शारीरिक दोष उत्पन्न हो जाता है।

14. **भार को अनुचित ढंग से ले जाना (Improper Way of carrying weight)** - यदि व्यक्ति भार को ठीक ढंग से नहीं ले जाता तो उस व्यक्ति का आसन भी दोषयुक्त हो जाता है। इस प्रकार का कार्य करने से शरीर की संरचना में दोष युक्त परिवर्तन होने लगते हैं। यदि कोई व्यक्ति एक हाथ से भार को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाता है तो उसको अपने शरीर को विपरित दिशा में झुकाना पड़ता है। ऐसा करने से उसकी रीढ़ की हड्डी में शारीरिक कुरूपता आ जाती है। हालांकि ऐसा केवल तभी होता है जब नियमित रूप से अधिक समय तक ऐसा कार्य करना पड़े।

15. **अन्य कारण (Other Reasons)** - समय- सारणी का उचित न होना, अधिक मानसिक कार्य का होना, मोटापा, लम्बी अवधि तक एक ही स्थिति में बैठे रहना, अधिक शारीरिक कार्य करना आदि भी शारीरिक दोषों को बढ़ावा देते है।

प्रश्न-1. संक्रामक रोग से आप क्या समझते हैं? इनके फैलने के माध्यम क्या हैं? एवं इन्हें नियन्त्रण एवं इनसे बचाव के उपाय बताइये।

**What do you understand by Communicable Diseases? What are its modes of transmission? And Describe the measures of controlling and preventing these.**

उत्तर - आदिकाल में व्यक्ति बीमारियों के बारे में अधिक नहीं जानते थे। वे सोचते थे कि ये बीमारियां देवी प्रकोप या प्रेतात्माओं के कारण होती है। लेकिन हिप्पोक्रेट्स (Hipocrates) यूनान का प्रथम चिकित्सक (Physician) था, जिसने बीमारियों के लक्षणों के बारे में विस्तारपूर्वक लिखा। शायद इसलिए उसे चिकित्साशास्त्र का जनक (Father of Medicine) कहा गया। उसके बहुत समय बाद जर्मनी के वैज्ञानिक रॉबर्ट कोच (Robert Koch) ने बीमारियों के वास्तविक कारणों पर अनेक अध्ययन किए तथा निष्कर्ष निकाला कि जीवाणुओं के कारण ही बीमारियां होती है। तब से लेकर आधुनिक युग तक अनेक खोजें हुई, लेकिन आज भी मनुष्य को बीमारियां घेरे रहती हैं और इनसे स्थायी छुटकारा नहीं मिल पाता। वैज्ञानिक निरन्तर इस क्षेत्र में खोज कर रहे हैं, लेकिन पूर्ण सफलता अभी तक नहीं मिली।

## संक्रामक रोगों का अर्थ
## (Meaning of Communicable Diseases)

संक्रामक रोग वे रोग होते हैं जो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में किसी माध्यम के द्वारा संचारित हो जाते हैं। ये रोगप्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्पर्क के द्वारा अन्य व्यक्तियों में फैलते रहते हैं। ऐसी बीमारियों के कीटाणु इतने शक्तिशाली होते हैं कि दूसरे व्यक्ति तक अवश्य पहुँच जाते हैं। कुछ ऐसे संक्रामक रोग होते हैं जो सीधे या प्रत्यक्ष सम्पर्क के द्वारा दूसरे व्यक्तियों में फैलते हैं, जैसे- खसरा (Measles), कुकर खांसी (Whooping Cough), तपेदिक (T.B.) आदि। इसके विपरित कुछ ऐसे संक्रामक रोग होते हैं जो अप्रत्यक्ष सम्पर्क के द्वारा एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में संचारित होते हैं, जैसे- मलेरिया, टायफाइड, हैजा, पेचिश आदि।

## संक्रामक रोगों के फैलने के माध्यम
## (Modes of Transmission of Communicable Diseases)

संक्रामक रोग Communicable Diseases) के फैलने के अनेक माध्यम हैं, जिनका वर्णन नीचे किया गया है -

1. **वायु द्वारा** - वायु संक्रामक रोगों के फैलाने में एक महत्वपूर्ण वाहक की भूमिका निभाती है। जब कोई बीमार व्यक्ति खांसता है, या छींकता है वह व्यक्ति वायु में छोटी-छोटी संक्रामित बूंदे छोड़ देता है। ऐसे समय में यदि कोई स्वस्थ व्यक्ति सांस लेता है तो सांस के द्वारा वे छोटी-छोटी संक्रमित बूंदे उसके शरीर में प्रवेश कर जाती हैं तथा वह स्वस्थ व्यक्ति भी संचारी रोग का शिकार हो जाता है। भीड़ वाली जगह, जैसे- सिनेमाघर, रेलवे स्टेशन व बाजार आदि की वायु में संक्रामक रोगों के कीटाणु फैले हुए होते हैं। ऐसी जगह स्वस्थ व्यक्ति वायु के माध्यम से इन कीटाणुओं को अपने शरीर में ग्रहण करता है तथा वह व्यक्ति भी बीमार हो जाता है। वायु के

द्वारा मनुष्य को मुख्य रूप से खसरा (Measles) और चेचक (Smallpox) जैसे रोग हो जाते हैं।

2. **प्रत्यक्ष संपर्क के द्वारा** - संक्रामक रोग प्रत्यक्ष संपर्क के द्वारा भी फैलते हैं। ऐसे रोग, एक बीमार व्यक्ति से दूसरे स्वस्थ व्यक्ति को चुम्बन से, शरीर से सम्पर्क द्वारा, हाथ मिलाने से, खांसने और छींकने से प्रायः हो जाते हैं। यौन संचारित रोग (Sexually Transmitted Diseases - S.T.D), आतशक (Syphilis) दाद और खुजली (Scabies) आदि ऐसी बीमारियां हैं, जो प्रत्यक्ष सम्पर्क के द्वारा फैलती है।

3. **अप्रत्यक्ष संपर्क के द्वारा** - संक्रामक रोग प्रत्यक्ष सम्पर्क के द्वारा ही नहीं, बल्कि अप्रत्यक्ष सम्पर्क के द्वारा भी फैलते हैं। ये रोग एक पीड़ित व्यक्ति से, स्वस्थ व्यक्ति में कपड़ों, पेन, रूमाल, किताबों, फर्नीचर आदि के द्वारा भी फैल जाते हैं। चेचक, दाद (Ring worm), चर्म रोग, खुजली (Scabies), Scarlet Fever, खाज (Eczema)आदि ऐसे रोग हैं, जो अप्रत्यक्ष सम्पर्क के द्वारा फैल जाते हैं।

4. **खाद्य एवं पेय पदार्थों के द्वारा** - संक्रामक रोगों के कीटाणु खाद्य एवं पेय पदार्थों के द्वारा भी फैलते हैं। जब एक स्वस्थ व्यक्ति ऐसा भोजन लेता है जिसमें बीमार व्यक्ति के कीटाणु उपस्थित हों तो वे कीटाणु उस स्वस्थ व्यक्ति के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं तथा वह भी संक्रामक रोग का शिकार हो जाता है। ऐसी बीमारियों के कीटाणुओं के फैलाने का कार्य मुख्य रूप से मक्खी करती है। जब कोई मक्खी बीमार व्यक्ति के मल या थूक पर बैठ जाती हैं तो उसके पैरों पर कीटाणु चिपक जाते हैं और जब वह मक्खी दूसरे व्यक्ति के भोजन पर बैठ जाती हैं तो वहीं पर कीटाणु छोड़ जाती हैं, जिससे वह स्वस्थ व्यक्ति भी बीमार हो जाता है। कई बार धूल व मिट्टी के महीन कण भी संक्रामक रोगों को फैलाने में इसी तरह की भूमिका निभाते हैं। मुख्य रूप से पेचिश, हैजा, डिप्थीरिया, Scarlet Fever, तपेदिक और टायफाइड आदि संक्रामक रोग खाद्य एवं पेय पदार्थ के द्वारा ही फैलते हैं।

5. **कीट- पतंगों द्वारा** - कीट- पतंगे, जैसे- मक्खी, मच्छर व खटमल आदि भी संक्रामक रोग फैलाते हैं। जब ये कीट-पतंगे किसी बीमार व्यक्ति का रक्त चूसते हैं तो रोग के कीटाणु इनके शरीर में भी प्रवेश कर जाते हैं तथा जब ये कीटाणु किसी स्वस्थ व्यक्ति का रक्त चूसते हैं तो कुछ कीटाणु उस व्यक्ति के शरीर में भी प्रवेश कर जाते हैं, जिसके फलस्वरूप वह व्यक्ति भी रोग का शिकार हो जाता है। हैजा, अतिसार, पीत ज्वर (Yellow Fever), प्लेग, टायफाइड, मलेरिया और फाइलेरिया आदि ऐसे संक्रामक रोग हैं, जो कीट- पतंगों के द्वारा फैलते हैं।

6. **त्वचा के द्वारा** - कई बार त्वचा ब्लेड, चाकू, कस्सी के द्वारा कट जाती हैं, जिसके फलस्वरूप टिटनेस जैसी बीमारी हो जाती है।

7. **माता- पिता के द्वारा** - कुछ संक्रामक रोग ऐसे होते हैं, जो बच्चों में माता- पिता के द्वारा फैल जाते हैं। ऐसी बीमारियां, माता- पिता के जीन्स के द्वारा बच्चों में पहुँच जाती हैं। तपेदिक और मधुमेह ऐसी ही बीमारियां हैं जो माता-पिता के माध्यम से ही बच्चों में पहुँच जाती है।

- जब किसी व्यक्ति में बीमारी के कीटाणु तो होते है, परन्तु वह स्वयं बीमार



नहीं होता। ऐसा व्यक्ति दूसरे स्वस्थ व्यक्ति को बीमारी से ग्रस्त कर सकता है। ऐसे व्यक्ति को बीमारी संवाहक व्यक्ति कह सकते है। ऐसे व्यक्ति में किसी बीमारी के कीटाणुओं के प्रति प्रतिरोधक क्षमता होती है, जिसके परिणामस्वरूप वे कीटाणु उस व्यक्ति को बीमार नहीं कर पाते। टायफाइड ऐसा ही बुखार है जो इस प्रकार फैल सकता है।

9. **यौन अंगों द्वारा** - कई संक्रामक रोग, जैसे - एड्स (AIDS), आतशक (Syphilis), सुजाक (Gonorrhoea) और कानक्रोइड (Chancroid) आदि यौन अंगों के द्वारा ही फैलती हैं। जिस व्यक्ति (पुरूष या स्त्री) में ऐसी बीमारी के कीटाणु होते हैं तो वह जब भी किसी विपरीत लिंग वाले व्यक्ति के साथ सहवास करता है तो उस व्यक्ति को भी वह बीमारी से पीड़ित कर देता है।

10. **गन्दे हाथों द्वारा** - गन्दे हाथों के द्वार भी संक्रामक रोग एक बीमार व्यक्ति से दूसरे स्वस्थ व्यक्ति में फैल जाते हैं। कुछ बच्चे अपने .यों को ठीक प्रकार से साफ नहीं करते। उनमें कीटाणु लगे रहते हैं, तथा वे शरीर के अन्दर प्रवेश कर जाते हैं। जिससे वे बीमार हो जाते हैं। पोलियों (Polio), सुषुम्ना की सूजन (Myelitis) और पेचिश इसी प्रकार की बीमारियाँ हैं जो प्रायः गन्दे हाथों के द्वारा फैलती हैं।

## संक्रामक रोगों से बचाव के उपाय
## (Measures of Prevention from Communicable Diseases)

जनसाधारण के लिए संक्रामक रोग बहुत ही भयानक सिद्ध हो सकते हैं, यदि इनके बचाव व रोकथाम के उपाय समय पर न किए जाएं। इन बीमारियों पर नियंत्रण करना तो आवश्यक है ही, इससे पहले हमारे लिए बचाव के पक्ष पर ध्यान देना अति आवश्यक है जिससे ये बीमारियां पैदा ही न हों। ऐसा कहा भी गया है कि इलाज से परहेज बेहतर है। संक्रामक रोगों के बचाव व रोकथाम के लिए निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैं -

1. **स्वास्थ्य विभाग को सूचना देना** - यदि कोई व्यक्ति इस प्रकार के रोग का शिकार हो जाता है तो उसके आस- पड़ोस के या उसके घर के व्यक्तियों का यह नैतिक कर्तव्य बन जाता है कि वे इस बात की सूचना शीघ्र- अति- शीघ्र स्वास्थ्य विभाग को दे दें ताकि वह बीमारी और कहीं न फैल सके। इस प्रकार की सूचना हैजा, चेचक, मलेरिया और प्लेग के बारे में अवश्य देनी चाहिए ताकि समय से स्वास्थ्य विभाग के अधिकारी बचाव कार्य कर सकें।

2. **बीमार व्यक्ति को अलग रखना** - जो व्यक्ति रोग का शिकार होता है उसे घर के शेष व्यक्तियों से अलग रखना चाहिए। ऐसे व्यक्ति को अलग कमरे में रखना चाहिए जिससे कम-से-कम व्यक्तियों का उससे सम्पर्क हो सके। केवल एक या दो व्यक्ति से ही उसकी देखभाल के लिए होने चाहिए। अस्पताल में भी संक्रामक रोग के शिकार व्यक्ति को पृथक कमरे में रखना चाहिए। ऐसा करने से संक्रामक रोगों से बचाव में सहायता मिलती है।

3. **टीकाकरण** - कुछ संक्रामक रोग इस प्रकार के होते हैं जिनका टीकाकरण कराने से ये रोग नहीं होते, क्योंकि व्यक्ति में प्रतिरोधक क्षमता बढ़ जाती है और ऐसी बीमारियों के कीटाणुओं का - और डिप्थीरिया (Diptheria) आदि।

ये टीके उचित समय पर लगवाने चाहिएं।

4. **व्यक्तिगत सफाई** - संक्रामक रोगों की रोकथाम व बचाव में व्यक्तिगत सफाई महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। व्यक्तिगत सफाई के लिए दैनिक कार्य पर विशेष ध्यान से करने पड़ते हैं, जैसे शौच आदि से निवृत होकर हाथ साबुन से अच्छी प्रकार साफ करने चाहिएं। प्रतिदिन ठीक प्रकार नहाना चाहिए। समय- समय पर नाखून काटते रहना चाहिए। घर में तौलिया, रूमाल, कंघी, बर्तन आदि साफ रखने चाहिएं। खांसते या छींकते समय रूमाल का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। भोजन करने से पहले हाथ भली प्रकार साफ कर लेने चाहिएं। यदि उपर्युक्त बातो का पालन हम सही ढंग से करते हैं तो संक्रामक रोगों से हम अपना बचाव कर सकते हैं।

5. **घुएं से कीटाणु रहित करना** - यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा मक्खी, मच्छर, खटमल आदि को समाप्त किया जाता है। मशीनों के द्वारा एक कुछ ऐसी गैसे वातावरण में छोड़ी जाती हैं, जिनसे मक्खी, मच्छर आदि का सर्वनाश हो जाता है। जिसके फलस्वरूप संक्रामक रोग नहीं फैलते।

6. **क्लोरीन युक्त पीने का पानी** - पानी के द्वारा होने वाले संक्रामक रोगों से बचने के लिए क्लोरीन युक्त पानी ही पीने के प्रयोग में लाना चाहिए। इसके अलावा पोटैशियम परमैंगनेट का प्रयोग भी किया जा सकता है। ऐसा करने से पानी में उपस्थित हानिकारक कीटाणु नष्ट हो जाते हैं।

7. **आस- पड़ोस की सफाई व्यवस्था** - संक्रामक रोगों से बचने के लिए अपने आस-पड़ोस की सफाई की व्यवस्था पर ध्यान देना अति आवश्यक है। यदि आस- पास गन्दगी हो या पानी जमा हो तो संक्रामक रोग अधिक फैलते हैं, इसीलिए आस- पड़ोस में सफाई की व्यवस्था अच्छी होनी चाहिए ताकि इस प्रकार के रोगों से स्वस्थ व्यक्ति बच सकें।

8. **रोगाणुओं का नाश करना** - जब बीमार व्यक्ति ठीक हो जाए तो उसके द्वारा प्रयोग किए गए कपड़े, बिस्तर, बर्तन आदि वस्तुओं से रोगाणुओं का नाश कर देना चाहिए, ताकि इन वस्तुओं से स्वस्थ व्यक्ति का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्पर्क न हो पाए और वह भी संक्रामक रोगों से ग्रस्त न हो जाएं।

9. **संक्रामक रोगों के बारे में उचित शिक्षा** - सभी व्यक्तियों को संक्रामक रोगों के बारे में उचित शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए। टी.वी. , रेडियों, समाचार- पत्रों और शिक्षण संस्थाओं आदि के माध्यम से व्यक्तिगत सफाई तथा यौन- शिक्षा भी अवश्य देनी चाहिए। इस तरह की शिक्षा देने का मुख्य लाभ यह होगा कि जनसाधारण बीमारियों के प्रति अधिक सचेत रह सकेंगें।

10. **भोजन संबंधी सुरक्षा नियमों का पालन** - संक्रामक रोगों से बचाव के लिए भोजन सम्बन्धी सुरक्षा नियमों का पालन अवश्य करना चाहिए। उदाहरण के लिए फलासें का सेवन करने से पहले उन्हें भली-भांति पानी से धोकर साफ कर लेना चाहिए तथा बाजार में उपलब्ध खुले में रखे खाद्य- पदार्थों के सेवन से परहेज करना चाहिए।



**प्रश्न-2. विभिन्न संक्रामक रोग एवं उनके उपचार के उपाये बताइये।**
**Describe various Communicable Diseases and measures of controlling and preventing these.**

**उत्तर - विभिन्न संक्रामक रोग (Various Communicable Diseases)**

### 1. आन्त्रिक ज्वर (Typhoid)

टायफाइड को आन्त्रिक ज्वर भी कहा जाता है। इसके अतिरिक्त इसे मोतीझारा व मियादी बुखार भी कहते हैं। यह दण्डाणु (Bacillus) के कारण होता है। ये दण्डाणु स्वस्थ व्यक्ति के शरीर में वायु, पानी व भोजन के द्वारा प्रवेश करते हैं। लेकिन इसका मुख्य गन्दा पानी ही होता है। यह विश्व में लगभग प्रत्येक जगह होता है।

**संक्रामक काल** - इसका संक्रामक काल 1 से 30 दिन का होता है।

**लक्षण (Symptoms)** - इसमें ज्वर धीरे-धीरे बढ़ता जाता है। शरीर का तापमान 103°F से 106°F तक बढ़ जाता है। सुबह के समय 99°F तापमान रहता है। 10 से 15 दिन के ज्वर के बाद पेट पर छोटे- छोटे दाने उभर जाते हैं। रोगी के सिर में दर्द रहता है। भूख नहीं लगती। शरीर के भार में कमी आ जाती है। कब्ज की शिकायत हो जाती है। 24 दिन के बाद शरीर का तापमान सामान्य से भी कम हो जाता है।

**बचाव व रोकथाम (Prevention and Control)**

1. रोगी के मलमुत्र को दबा देना चाहिए।
2. मक्खियों से बचाव रखना चाहिए।
3. रोगी के वस्त्रों को पानी में उबालकर साफ करना चाहिए।
4. रोगी को पूर्ण रूप से आराम करना चाहिए।
5. रोग से बचाव के लिए टीका लगवाना चाहिए।
6. जब रोगी को ज्यादा ज्वर हो तो ठण्डे पानी की पट्टियां उसके माथे पर रखनी चाहिए। बर्फ की थैली (Ice Bag) का प्रयोग भी उचित रहता है।
7. रोगी को तरल भोजन देना चाहिए।
8. स्वास्थ्य विभाग को सूचित करना चाहिए।
9. रोगी को परिवार के सदस्यों से अलग रखना चाहिए।
10. रोगी के द्वारा प्रयोग किए गए बर्तनों में भोजन नहीं करना चाहिए।
11. अधिक ज्वर के समय एस्प्रिन (Asprin) का प्रयोग भी ठीक रहता है।
12. डॉक्टर से सम्पर्क करना चाहिए।

### 2. तपेदिक (Tuberculosis)

क्षयरोग एक घातक, संक्रामक रोग है। भारतवर्ष में बहुत से व्यक्तियों को यह रोग हो जाता है। इस रोग की रोकथाम व उपचार हो सकता है। सन् 1882 में रॉबर्ट कोच (Robert Koch) ने तपेदिक

दण्डाणु (Tuberculosis Bacillus) की खोज की थी, जिसके कारण यह रोग फैलता है। यह जीवाणु शरीर के किसी भी भाग पर आक्रमण कर सकता है। कभी- कभी व्यक्ति के सारे शरीर को प्रभावित कर देता है। इस जीवाणु का आकार मुडे हुए डंडे जैसा होता है। यह जीवाणु दो प्रकार से फैलता है:- (क) व्यक्ति से व्यक्ति में (ख) पशुओं से व्यक्ति में। जीवाणुओं के अतिरिक्त यह रोग पौष्टिक भोजन के अभाव, उचित मात्रा में भोजन न मिलना, छोटी और बन्द जगह पर रहने के कारण भी होता है। यह रोग प्रायः गरीबों में तथा देहात की अपेक्षा शहरों में अधिक होता है। जीवाणुओं का आक्रमण प्रायः फेफड़ों पर अधिक होता है।

**संक्रामक काल (Incubation Period)** - इसका संक्रामक काल सप्ताह, महीना या एक वर्ष भी हो सकता है।

**फैलने का माध्यम (Modes of Transmission)** - क्षयरोग के जीवाणु थूक और कफ के द्वारा रोगी के शरीर से बाहर निकलकर वायु में मिल जाते हैं। ये जीवाणु श्वास के द्वारा दूसरे स्वस्थ व्यक्ति के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं तथा धीरे-धीरे वह व्यक्ति भी रोगग्रस्त हो जाता है।

**लक्षण (Symptoms)** - रोगी को सुबह ज्वर नहीं होता, परन्तु शाम के समय हल्का- हल्का ज्वर होने लगता है। रोगी के शरीर का भार कम होने लगता है। रोगी को रात के समय सोते हुए पसीना आने लगता है। भूख में कमी तथा थोड़ा-सा कार्य करने पर थकावट होने लगती है। रोगी को लगातार हल्की व सूखी खांसी रहने लगती है। शुरू में केवल बलगम निकलता हैं, परन्तु धीरे-धीरे बलगम में रक्त भी आने लगता है। छाती तथा गले में दर्द रहने लगता है। खाँसी की तीव्रता प्रायः अधिक होने लगती है।

**बचाव व रोकथाम (Prevention of Control)** - संतुलित आहार का सेवन करना चाहिएं। घर हवादार व स्वच्छ होना चाहिए। बच्चों को B.C.G. का टीका अवश्य लगवाना चाहिए। बच्चों को ऐसी जगह नहीं खेलना चाहिए, जहाँ पर धूल कण अधिक संख्या में हों। पराबैंगनी किरणों (Ultraviolet Rays) से बचना चाहिए। दूध को पूरी तरह उबाल कर पीना चाहिए। जिस व्यक्ति में रोग के उपर्युक्त लक्षण स्पष्ट दिखाई दें, ऐसे व्यक्ति का उपचार तुरंत शुरू करना चाहिए। भारतवर्ष में इस रोग का उपचार मुफ्त किया जाता है। रोगी को 1 से 1 वर्ष तक लगातार दवाइयां लेनी चाहिए तथा दवाइयों का सेवन पूरे समय तक करना चाहिए।

### 3. हैजा (Cholera)

हैजा एक भयानक संक्रामक रोग है। इस रोग के कीटाणुओं को 'कोमा बैसिलस' कहते हैं। इस रोग से ग्रस्त व्यक्ति का तुरंत इलाज करवाना चाहिए, नहीं तो कई बार इससे व्यक्ति की जल्दी ही मृत्यु हो सकती हैं।

**फैलने का माध्यम (Modes of transmission)** - इस रोग के कीटाणु लाखों की संख्या में व्यक्ति के मल में विकसित होते हैं। इस प्रकार ये कीटाणु भूमि तथा पानी में मिल जाते हैं तथा पीने का पानी दूषित हो जाता है। मक्खियां भी कीटाणुओं को इधर- उधर फैलाती हैं तथा भोजन को प्रदूषित करती हैं। इस प्रकार स्वस्थ व्यक्ति के शरीर में ये कीटाणु भोजन व पानी के द्वारा प्रवेश कर जाते



**संक्रमण काल (Incubation Period)** - इसका संक्रमण काल दो सप्ताह का होता है।

**लक्षण** - इस रोग के कारण उल्टी व दस्त लग जाते हैं। ये दस्त पतले होते हैं। पेट में मरोड़े हो जाते हैं। रोगी को प्यास भी अधिक लगती है। इस रोग के कारण शरीर में पानी की कमी (Dehydration) हो जाती हैं, जिससे रोगी की मृत्यु भी हो सकती है। आँखें व गाल अंदर की ओर धँस जाते हैं। त्वचा पीली तथा पैर बिल्कुल ठंडे हो जाते हैं। आवाज कमजोर, नब्ज (Pulse) तीव्र लेकिन कमजोर हो जाती हैं। रक्त चाप (Blood Pressure) कम हो जाता है। सारे शरीर में दर्द महसूस होने लगता है। हाथ- पैरों में ऐंठन हो जाती हैं। रोगी के नाखून काले पड़ जाते हैं। रोगी प्रायः अचेत हो जाता है और शारीरिक रूप में बहुत कमजोर हो जाता है।

**बचाव व रोकथाम (Prevention and control)** - स्वास्थ्य केन्द्र में जाकर इसकी सूचना देनी चाहिए। परिवार के बाकी सदस्यों का टीकाकरण करवाना चाहिए। फल व सब्जियां साफ पानी से धोकर उपयोग में लानी चाहिए। नालियाँ साफ रखनी चाहिएं। बचे हुए खाद्य पदार्थों को खुले स्थान पर नहीं फेंकना चाहिए। उबले हुए पानी का प्रयोग करना चाहिए। रोगी को तुरंत डॉक्टर के पास ले जाना चाहिए तथा दवाई दिलवानी चाहिए। उबले हुए पानी मे ग्लूकोज़ मिलाकर रोगी को बार- बार पिलाना चाहिए। रोगी के उल्टी व दस्त को मिट्टी में दबा देना चाहिए। रोगी के कपड़े व बर्तन अलग रखने चाहिएं। रोगी को चावल का पानी (Rice Water) देना लाभदायक होता है।

### 4. चेचक (Small Pox)

चेचक भी एक संक्रामक रोग है जो प्रायः बच्चों को होता है। यद्यपि अब भारतवर्ष में काफी सीमा तक इस रोग पर काबू पाया जा चुका है।

**फैलने के माध्यम (Modes of Transmission)** - चेचक का मुख्य कारण एक प्रकार का विषाणु (Virus) है। यह विषाणु रोगी के नाक, गले और रक्त में होता है। इस रोग से शरीर पर छोटे- छोटे दाने उभरते हैं, जिनमें पीप भरा होता है। कुछ समय बाद इन दानों के सूखने पर पपड़ी- सी जमने लगती हैं। अतः रोगी की पपड़ियों के साथ- साथ उसके छींकने व खांसने से इसके कीटाणु हवा में उड़ने लगते हैं और दूसरे स्वस्थ बच्चों के शरीर में वायु के माध्यम से प्रवेश कर जाते हैं तथा उन्हें भी संक्रमित कर देते हैं।

**संक्रमण काल** - सामान्तया इस का संक्रमण काल दो सप्ताह का होता है।

**लक्षण (Symptoms)** - बच्चे को तेज बुखार आता है। बच्चा सुस्त तथा कमजोर होने लगता है। आँख लाल हो जाती है। सिर तथा पीठ में दर्द उत्पन्न हो जाता है। कई बार उल्टी भी हो जाती है। तीसरे या चौथे दिन बुखार कम होने लगता है तथा मुहँ, पीठ व छाती पर छोटे- छोटे दाने उभरने लगते है। दो- तीन दिन बाद दाने फूल जाते हैं और उनमें पीप भर जाती है। इसके बाद ये दाने सूखने लगते हैं तथा बुखार भी कम होने लगता है। चेचक में कई बार आँखें खराब होने का डर भी रहता हैं, क्योंकि ये दाने आँखों में भी निकल जाते हैं।

**बचाव व रोकथाम (Prevention and control)**

1. इस रोग से ...

3. उसकी देखभाल के लिए वहीं व्यक्ति होना चाहिए, जिसने चेचक का टीका लगवा लिया हो।
4. रोगी के थूक, मलमूत्र व उल्टी आदि को गड्ढे में डालकर मिट्टी से दबा देना चाहिए।
5. रोगी के कपड़े व बर्तन आदि अलग रखने चाहिए।
6. घर में अन्य बच्चों को रोगी के आस- पास नहीं जाने देना चाहिए।
7. इस रोग की सूचना तुरंत स्वास्थ्य अधिकारी को दे देनी चाहिए।
8. रोगी को नमक नहीं देना चाहिए।
9. रोगी को इस दौरान कोई दवाई नहीं देनी चाहिए।

### 5. मलेरिया (Malaria)

मलेरिया एक ऐसा संक्रामक रोग है जो हमारे देश में अधिकतर होता है। यह रोग प्राय: वर्षा ऋतु में होता है क्योंकि वर्षा होने से अधिकतर पानी निचले इलाकों या गड्ढों में भर जाता है, जिसके कारण वहां पर मच्छर अधिक पनपने लगते हैं। यह रोग केवल मादा मच्छर (Anapheles) के काटने से ही होता है।

#### फैलने का माध्यम (Modes of transmission)

प्राय: मादा मच्छर मनुष्य को शाम या रात के समय काटती है। वास्तव में, यह मनुष्य का रक्त चूसती है और जब यह ऐसे व्यक्ति का रक्त चूसती है जो मलेरिया से ग्रस्त होता है तो रक्त के साथ- साथ मलेरिया के परजीवी (Parasites) भी मादा मच्छर के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। जब यह मादा मच्छर किसी स्वस्थ व्यक्ति को काटती है तो रक्त चूसने की प्रक्रिया के दौरान यह मलेरिया के कीटाणु स्वस्थ व्यक्ति के रक्त में छोड़ देती हैं, जिसकी वृद्धि तेजी से उस व्यक्ति के शरीर में होती है और कुछ ही समय बाद वह व्यक्ति बीमार हो जाता है।

#### मलेरिया के प्रकार (Types of Malaria)

मलेरिया तीन प्रकार का होता है -

1. **प्लाज्मोडियम फैल्सिपेरम** - इस प्रकार का मलेरिया ज्वर 48 घंटे के बाद होता रहता है। यदि इसका उचित उपचार न किया जाए तो यह लगभग 1 वर्ष तक रहता है।
2. **प्लाज्मोडियम विवक्स** - यदि समय पर इस प्रकार के ज्वर का इलाज न किया जाए तो यह तीन वर्ष तक रह सकता है। यह ज्वर भी प्रत्येक 48 घंटे के बाद होता है।
3. **प्लाज्मोडियम मलेरी** - इस प्रकार का ज्वर प्रत्येक 72 घंटे बाद होता है।

**संक्रमण काल** - मलेरिया का संक्रमण काल 12 दिन का होता है।

#### मलेरिया के लक्षण

1. **ठंड की स्थिति** - इस स्थिति में बहुत अधिक ठंड लगती है। यहां तक कि रजाई या कम्बल में भी कोई लाभ नहीं होता। ऐसी स्थिति में सिरदर्द और उल्टी की शिकायत होती है।
2. **गर्मी की स्थिति** - ठंड वाली स्थिति के उपरांत लगभग 1 घंटे बाद शरीर का तापमान लगभग 410 से. हो जाता है। रोगी बहुत गर्मी महसूस करने लगता है। यह स्थिति 2 से 6 घंटे तक रहती है।
3. **पसीने की स्थिति** - गर्मी की स्थिति के बाद पसीना काफी आता है। रोगी के कपड़े गीले हो जाते





हैं। ज्वर कम होने लगता है। नाड़ी की गति (Pulse Rate) सामान्य हो जाती है।

#### बचाव तथा रोकथाम (Prevention and Control)

1. मलेरिया से बचाव के लिए अपने आस पास के सभी मच्छरों को समाप्त कर देना चाहिए। इसके लिए डी. डी. टी. या मैलाथिआन (Malathion) का प्रयोग किया जा सकता है। इसके अलावा वर्षा का पानी गड्ढों में जमा नहीं होने देना चाहिए ताकि वहां पर मच्छर अंडे न दे सके।
2. समय- समय पर स्वस्थ व्यक्तियों को कामोक्विन (Camoquin) या क्लोरोक्विन (Chloroquine) की गोलियां डॉक्टर की सलाह से लेनी चाहिए।
3. मच्छरदानी का प्रयोग करना चाहिए या मच्छरों को दूर रखने के लिए ओडोमास (Odomos) शरीर के ऊपर लगानी चाहिए।
4. रोगी को ठंड से बचाने के लिए गर्म कपड़ों पहनने चाहिए जिससे रोगी अधिक ठंड महसूस न करे।
5. यदि शरीर का तापमान अधिक हो जाए तो ठंडे पानी की पट्टियां माथे पर बार-बार लगानी चाहिए।
6. सिर दर्द के लिए एस्प्रिन दे देनी चाहिए।
7. रोगी का इलाज तुरंत डॉक्टर से कराना चाहिए।

### 6. इन्फ्लूएंजा (Influenza)

इन्फ्लूएंजा एक ऐसा रोग है जो तीव्र गति से फैलता है। यह रोग, रोगी के द्वारा निकाले गए श्वास के द्वारा, उसके खाँसने, छींकने तथा मुहँ या नाक के द्वारा निकाले गए पदार्थ से स्वस्थ व्यक्ति को हो सकता है। इस रोग के कीटाणु, स्वस्थ व्यक्ति में नाक, मुहँ या आँख के द्वारा प्रवेश करते है। यह बीमारी न केवल परिवार तक सीमित रहती है बल्कि पूरे शहर या गांव में फैल जाती है।

**संक्रमण काल** - इस बीमारी का सम्प्राप्ति काल 1 से 2 दिन तक होता है और लगभग 7 दिन तक यह बीमारी रहती है।

**लक्षण (Symptoms)** - जिस व्यक्ति को यह रोग हो जाता है। उसे ज्वर महसूस होता है। वह सिरदर्द, शरीर दर्द, पसीना तथा ठंड भी महसूस करता है। शरीर का तापमान लगभग 104°F से 105°F तक हो जाता है। अधिक ज्वर होने पर भी ठंड अधिक लगती है। पीठ में अधिक दर्द महसूस होता है। पसीना आने के बाद शरीर का तापमान कम होने लगता है। उसके बाद रोगी को कमजोरी महसूस होने लगती है तथा वह मानसिक रूप से परेशान - सा रहता है। गला खराब हो जाता है तथा नाक के द्वारा श्वास ठीक प्रकार नहीं आता। नाक से पानी बहना शुरू हो जाता है। रोगी छींकने तथा खाँसने लगता है। इस बीमारी से श्वास नली में और फेफड़ों में संक्रमण (Infection) हो जाता है तथा निमोनिया भी हो सकता है।

#### बचाव व रोकथाम (Prevention and Control)

1. रोगी को दूसरे स्वस्थ व्यक्तियों से अलग कमरे में रखना चाहिए।
2. रोगी को गर्म बिस्तर देना चाहिए ताकि ठंड से उसको निमोनिया न हो सके।

3. रोगी को थोड़े गर्म पानी से नाक और गला साफ करना चाहिए। गर्म पानी में थोड़ा सा नमक मिलाना लाभदायक होता है। गरारे (Gargles) करना भी ठीक रहता है।
4. पीने के लिए उबला हुआ पानी देना चाहिए।
5. रोगी को पतला आहार देना चाहिए।
6. रोगी को समय- समय पर वाष्प में श्वास लेना चाहिए, जिसके परिणामस्वरूप श्वास लेने में कोई परेशानी नहीं होती।
7. रोगी के कमरे का तापमान थोड़ा अधिक रहना चाहिए।
8. जब रोगी का तापमान सामान्य हो जाए तो उसको पूर्ण विश्राम करना चाहिए।

### 7. खसरा (Measles)

खसरा एक आम संक्रामक रोग हैं, लेकिन इसके परिणाम बहुत भयानक हो सकते हैं। छोटे बच्चे प्रायः इस रोग का शिकार हो जाते हैं। यह रोग आर.एन. ए. वायरस के कारण होता है। यदि इस रोग का उचित इलाज न किया जाए तो मृत्यु भी हो सकती है।

**संक्रमण काल** - इस रोग का संक्रमण काल सात से पंद्रह दिन का होता है।

**फैलने का माध्यम (Modes of transmission)** - यह रोग वायु के द्वारा फैलता है।

**लक्षण (Symptoms)** - प्रारंभ में जुकाम होता है तथा फिर नाक बहने लगती है। रोगी को ठंड लगने लगती है और सिरदर्द भी रहने लगता है। छींकने तथा खाँसने के साथ ज्वर भी बढ़ने लगता है। कभी- कभी आँखों से पानी भी बहने लगता है। धीरे- धीरे शरीर पर छोटे-छोटे दाने उभरने लगते हैं। ये दाने पहले चेहरे पर होते हैं, उसके बाद धीरे- धीरे सारे शरीर पर उभर जाते हैं। प्रारंभिक अवस्था में इन दानों का रंग लाल होता है। आँखें भी सूज जाती है। ये दानें तीन या चार दिन तक रहते हैं, उसके बाद समाप्त होने लगते है। ज्वर भी इसी प्रकार समाप्त हो जाता है।

**बचाव व रोकथाम (Prevention and Control)** - यदि बच्चों को 9 महीने की उम्र में पहला टीका तथा 15 महीने की उम्र में दूसरा टीका लगवाएं तो इस रोग के होने की संभावना बहुत कम हो जाती है। जिन बच्चों को यह रोग हो जाता है उन्हें स्कूल नहीं भेजना चाहिए, जब तक दाने समाप्त न हो जाएं यदि यह रोग आसपास अधिक फैलने लगे तो स्वास्थ्य केन्द्र में सूचना दे देनी चाहिए। इस रोग के होने पर दवा का कोई प्रभाव नहीं होता। ऐसे समय पर रोगी को साफ एवं हवादार कमरें में रखना चाहिए। ज्वर होने पर (asprin) एस्प्रिन दे देनी चाहिए। रोगी को ठंड से बचाना चाहिए। शेष बच्चों का रोगी से संपर्क नहीं होना चाहिए। रोगी को त्वचा पर खुजली नहीं करने देनी चाहिए। आँखों की पीड़ा दूर करने के लिए बोरिक एसिड का घोल तीन- तीन बार डालना चाहिए। रोगी द्वारा प्रयोग की गई सामग्री को निसंकृत कर देना चाहिए। रोगी के ऊपर तेज रोशनी नहीं पड़नी चाहिए।

### 8. एड्स (AIDS)

आजकल बहुत से व्यक्ति AIDS की बीमारी का शिकार हो जाते हैं। यह बीमारी बहुत तीव्र गति से हमारे देश में भी फैल रही हैं। लाखों व्यक्ति इस बीमारी के कारण मर चुके हैं। विश्व में प्रतिदिन 16 हजार व्यक्ति इस बीमारी की चपेट में आ रहे हैं। अधिकतर व्यक्ति इस बीमारी से अनभिज्ञ है। वास्तव में, यह बीमारी एक भयानक बीमारी है। यह बीमारी HIV (Human Immuno





Deficiency Virus) के द्वारा फैलता हैं, यह वायरस मनुष्य के शरीर में प्रतिरक्षा प्रणाली के मुख्य घटक श्वेत रक्त कणिकाएं (White Blood Cells) पर आक्रमण करके उन्हें कमजोर कर देते हैं, जिसके कारण व्यक्ति की अनेक रोगों से लड़ने की क्षमता कम हो जाती हैं, जिससे शरीर में धीरे-धीरे कमजोरी आ जाती है। एड्स के कारण व्यक्ति की मृत्यु भी हो जाती है।

**फैलने का माध्यम (Modes of Transmission)**

1. अनेक व्यक्तियों/महिलाओं के साथ यौन सम्बन्ध रखना।
2. रक्त का प्रत्यारोपण।
3. संक्रमित ब्लेड, सिरिंजों (Syringes) के प्रयोग से।
4. संक्रमित रेजर के प्रयोग से।
5. समलिंगी के साथ यौन सम्बन्ध रखना।

**लक्षण (Symptoms)**

1. पसीना तथा बुखार आना।
2. शरीर का वजन कम हो जाना।
3. लगातार खाँसी का आना।
4. लसीका ग्रंथियों में सूजन आना।
5. उपचार के बाद भी समय- समय पर संक्रमण का होना।

**बचाव व रोकथाम (Prevention and Control)**

सामान्यतया एड्स का अभी तक कोई विशेष उपचार नहीं हैं, लेकिन AIDS से बचाव के उपया किए जा सकते हैं -

1. समलिंगी यौन सम्बन्धों से दूर रहना चाहिए।
2. पति-पत्नी के अतिरिक्त किसी विपरीत लिंग से यौन सम्बन्ध नहीं रखने चाहिए।
3. Injection के लिए Disposable syringes का प्रयोग करें।
4. रक्त के प्रत्यारोपण से पहले रक्त की जाँच करा लेनी चाहिए।
5. एड्स के केस की सूचना तुरन्त स्वास्थ्य विभाग की दे देनी चाहिए।
6. एड्स फैलने के माध्यमों के बारे में विस्तृत जानकारी देना।

### 9. पेचिश (Dysentery)

यह रोग बड़ा दुखःदायी है। यह एक प्रकार से छूत का रोग है।

**लक्षण (Symptoms)**

1. इसके कारण पेट में बहुत दर्द का अनुभव होता है।
2. इसके कारण पेट में ऐंठन हो जाती है।
3. बुखार बहुत तेज हो जाता है।
4. मल के साथ आंव तथा रक्त दोनों आते हैं।

5. पेचिस दो प्रकार की होती है। एक पेचिस अमीबा के जीवाणु द्वारा तथा दूसरी बेसिलस के जीवाणु द्वारा उत्पन्न होती है।

6. रोगी का शरीर दुर्बल हो जाता है।

**फैलने के माध्यम (Modes of Transmission)**

1. यह रोग गंदे पानी का सेवन करने से फैलता है।
2. बीमार पशु का दूध पीने से भी यह रोग फैलता है।
3. अंतडियाँ कमजोर हो जाती है। अंतडियों में दर्द होता है।
4. शरीर बहुत दुबला-पतला हो जाता है।

**बचाव व रोकथाम (Prevention and Control)**

1. पानी को उबालकर पीना चाहिए।
2. मक्खियों से बचकर रहना चाहिए।
3. बीमार पशु का दूध नहीं पीना चाहिए।
4. गले- सड़े फलों का सेवन नहीं करना चाहिए।
5. रोगी की सफाई का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

## 10. अतिसार (Diarrhoea)

यह रोग छोटे बच्चों को अधिक होता है। इसके कारण बच्चे की मृत्यु भी हो सकती है। यह रोग बरसात के मौसम में अधिक होता है।

**लक्षण (Symptoms)**

1. यह रोग छोटी आयु के बच्चों को होता है।
2. इस रोग में पाचन क्रिया ठीक नहीं रहती है।
3. दस्तों की संख्या 8- 15 हो जाती है।
4. थोड़ा बुखार आने लगता है।
5. इस रोग में प्यास अधिक लगती है।
6. रोगी का शरीर सूखने लगता है।

**फैलने के माध्यम (Modes of Transmission)**

1. गन्दी वस्तुओं के सेवन से यह रोग फैलता है।
2. यह रोगी की आन्तड़ियों को कमजोर कर देता है।
3. अंतड़ियों में खटास एवं विकास उत्पन्न हो जाते हैं।
4. मोटा तथा भोजन कम चबाने के कारण यह रोग फैलता है।

**बचाव व रोकथाम (Prevention and Control)**

1. गन्दी वस्तुओं का सेवन नहीं करना चाहिए।
2. गाय का दूध पीते समय सावधानी बरतनी चाहिए।





3. दूध स्वच्छ बरतन में उबालकर पीना चाहिए।
4. सफाई का विशेष ध्यान देना चाहिए।
5. देर तक रखा हुआ दूध नहीं पीना चाहिए।

## 11. प्लेग (Plague)

प्लेग रोग - यह रोग चूहों द्वारा फैलता है। यह महामारी का रोग है। गांव या शहर में किसी एक स्थान पर हो जाने पर जल्दी ही चारों तरफ फैल जाता है।

**लक्षण (Symptoms)**

1. जाँघ व गर्दन पर गिलटियाँ निकल जाती है।
2. इसमें बुखार 103°F से 107°F तक पहुँच जाता है।
3. उल्टी व दस्त भी होने लगते हैं।
4. आंख लाल हो जाती है तथा पानी बहने लगता है।
5. इसके रोगाणु फेफड़ों पर आक्रमण करके निमोनिया रोग उत्पन्न कर देते हैं।

**बचाव व रोकथाम (Prevention and Control)**

1. पिस्सू और चूहों को मारने के लिए कीड़ेमार दवाइयों का प्रयोग करना चाहिए।
2. पांव में गर्म जुराबें पहननी चाहिए।
3. घर तथा बाहर की सफाई करनी चाहिए।
4. रोगी को अलग कमरें में रखना चाहिए।
5. रोग के लक्षण प्रकट होते ही स्वास्थ्य विभाग को इसकी जानकारी तत्काल देनी चाहिए।

## 12. निमोनिया (Pneumonia)

यह रोग वायु द्वारा फैलता है। इस रोग में फेफड़ों में सूजन आ जाती है। सांस में भी रूकावट आ है। रोगी के थूक से वायु में मिलकर सांस द्वारा कीटाणु दूसरे व्यक्ति के शरीर में प्रवेश कर है। कीटाणु कमजोर शरीर पर आक्रमण कर देते हैं। अधिक सर्दी लगने से भी निमोनिया हो है।

**लक्षण (Symptoms)**

1. बहुत तेज बुखार हो जाता है।
2. छाती में दर्द होने लगता हैं। फेफड़े सूज जाते हैं।
3. सांस की नली में रूकावट आ जाती है।

**बचाव व रोकथाम (Prevention and Control)**

1. रोगी को सर्दी से बचाना चाहिए।
2. रोगी की छाती पर गर्म सेंक देना चाहिए।
3. निमोनिया हो जाने पर तुरन्त डॉक्टर को सूचित करना चाहिए।
4. रोगी व्यक्ति को अलग रखना चाहिए।

### 13. काली खाँसी (Whooping Cough)

यह एक संक्रामक रोग है और यह वायु द्वारा फैलता है। यह छोटे बच्चों को अधिक होता है। सर्दी के कारण भी यह रोग अधिक होता है। घर में यदि यह रोग किसी बच्चें को हो तो दूसरे बच्चों को होने का डर होता है।

**लक्षण (Symptoms)**

1. गला बिल्कुल लाल हो जाता है और उसमें घाव हो जाता है।
2. खाँसी के साथ ज्वर भी होता है।
3. फेफड़ों में बलगम जम जाता है।
4. बड़ी आयु में लापरवाही करने पर दमा हो जाता है।
5. छोटी आयु के बच्चों को निमोनिया होने का डर रहता है।
6. खाँसी बहुत देर तक रहती है।
7. कभी खाँसी रूक-रूक कर आती है।

**फैलने के माध्यम (Modes of Transmission)**

1. यह रोग जीवाणु द्वारा होता है। इस रोग के जीवाणु वायु द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँच जाते हैं।
2. सर्दियों में यह रोग अधिक फैलता है।
3. खाँसी के साथ- साथ बुखार भी हो जाता हैं।
4. रोगी के पास बैठने से भी यह रोग हो जाता है।
5. रोगी के बलगम में ही इसके जीवाणु होते हैं, जो स्वस्थ व्यक्ति पर आक्रमण कर देते हैं।

**बचाव व रोकथाम (Prevention and Control)**

1. छोटी आयु के बच्चों को रोगी के पास नहीं बैठने देना चाहिए।
2. रोगी की थूक या बलगम को दबा देना चाहिए।
3. काली खाँसी से बचने के लिए टीका लगवाना चाहिए।

### 14. डिप्थीरिया (Diptheraa)

यह बहुत खतरनाक किस्म का रोग है। यह प्रायः डेढ़ वर्ष से 12 वर्ष के बच्चों को अधिक होता है। इसका प्रभाव सर्दी की ऋतु में अधिक होता है। डिप्थीरिया रोग एक प्रकार के जीवाणुओं द्वारा होता है जो गले, नाक, सांस की नली पर हमला कर देते हैं।

**लक्षण (Symptoms)** - इस रोग में गले के अन्दर झिल्ली सी बन जाती है। झिल्ली अधिक बढ़ने पर गले का द्वार बिल्कुल बन्द हो जाता है और सांस लेना कठिन हो जाता है। यदि ठीक समय पर इसका इलाज न किया जाए तो रोगी की मृत्यु हो जाती है।

**बचने के उपाय (Prevention and Control)**

1. रोगी को टीका लगवाना चाहिए।
2. गर्म पानी में नमक डालकर गरारे करने चाहिए।
3. रोगी के बर्तन, वस्त्रों को कीटाणु रहित रखना चाहिए।
4. गले की सफाई का विशेष ध्यान देना चाहिए।

### 15. रैबीज (Rabies)

रैबीज या हाइड्रोफोबिया एक खतरनाक बीमारी हैं, क्योंकि आमतौर पर रैबीज से पीड़ित रोगी की मृत्यु हो जाती है। यह रोग वायरस के कारण होता है। मनुष्यों में रैबीज प्रायः कुत्ते के काटने से होती है। 'Rhabdo' नामक वायरस स्नायु ऊतकों (Slivary Glands) व को संक्रमित करता है। काटने के 4 से 6 सप्ताह बाद रैबीज के वायरस पूर्ण रूप से विकसित हो जाते हैं। भारतवर्ष में यह बीमारी आम है।

**लक्षण (Symptoms)**

1. बुखार होना।
2. कटे हुए स्थान पर दर्द होना।
3. सिरदर्द का होना।
4. खाना व पीना निगलने में परेशानी होना।
5. पानी से डर लगना।
6. यद्यपि रोगी को प्यास लगती है परन्तु वह पानी नहीं पी सकता।
7. श्वसन सम्बन्धी मांसपेशियां पिचक जाती है।
8. रोगी को भ्रम या भ्रान्ति हो जाती है।

**बचाव व उपचार (Prevention and Control)**

1. पशु के काटने के केस में स्वास्थ्य विभाग को तुरन्त सूचना देनी चाहिए।
2. आवारा कुत्तों के साथ नहीं खेलना चाहिए।
3. पालतू कुत्तों को रैबीज प्रतिरोधक टीका अवश्य लगवाना चाहिए।
4. ऐसे जानवर जिस पर रैबीज का संदेह हो, उसे कम-से-कम 10 दिनों तक ध्यानपूर्वक देखना चाहिए। यदि उसे वास्तव में रैबीज है तो उसे तुरन्त मार देना चाहिए।
5. घाव को तुरन्त बहते हुए साफ पानी से धो देना चाहिए।
6. तुरन्त Anti- rabies टीकाकरण का पूरा कोर्स करवा लेना चाहिए।

### 16. टेटनस (Tetanus)

टेटनस एक अत्यन्त खतरनाक बीमारी है। यह बीमारी मिट्टी के द्वारा फैलती हैं, क्योंकि मिट्टी में ही टेटनस के जीवाणु होते हैं। जब शरीर के किसी अंग पर कटाव हो जाता है तो टेटनस के जीवाणु उस घाव में मिट्टी के द्वारा पहुंच जाते हैं।

**लक्षण (Symptoms)**

1. गर्दन में अकड़ व दर्द होता है।

2. जबड़ा भिच या बन्द हो जाता है।

**बचाव व उपचार (Prevention and Control)**

1. घाव व इसके चारो ओर की त्वचा बहते हुए साफ पानी से साफ होनी चाहिए।
2. घाव को धोने के बाद तुरन्त ही उस पर डिटॉल लगा देनी चाहिए।
3. इससे बचाव के लिए बचपन और गर्भावस्था के दौरान टीकाकरण अवश्य करा देना चाहिए।
4. शरीर को किसी भी हिस्से पर चोट लगने के तुरन्त बाद (Anti- Tetanus) का टीका अवश्य लगवाना चाहिए।

### 17. हैपाटाइटिस (Hepatitis)

हैपेटाइटस बी एक भयानक बीमारी है। यह बीमारी वायरस- बी के कारण होती है। यह बीमारी जिगर को प्रभावित करती हैं इसीलिए इसे हैपीटाइटस-बी कहा जाता है।

**लक्षण (Symptoms)**

1. बुखार होना।
2. जी मिचलाना।
3. भूख में कमी होना।
4. पीलिया होना।
5. जिगर का बढ़ना।

**फैलने के माध्यम (Modes of Transmission)** - हैपीटाइटस- बी का वायरस- बी दूध व पानी के द्वारा शरीर के अन्दर प्रवेश करता है। इस बीमारी का संक्रमण रक्त के प्रत्यारोपण, संक्रमित सुइयों या सिरिंजों, समलैंगिकता, एक्यूपंक्चर (Acupuncture) या शरीर पर गोदना गुदवाने (Tattoo) आदि से हो जाता है।

**बचाव व उपचार (Prevention and Control)**

1. अस्वच्छता की दशाएं, गन्दे पानी का निकास व सामाजिक दशाओं में सुधार करना चाहिए।
2. यदि कोई बच्चा इस बीमारी का शिकार हो जाता है तो उसे स्कूल नहीं भेजना चाहिए।
3. रोगी को पूर्ण विश्राम करना चाहिए।
4. हैपीटाइटस-बी की प्रतिरक्षा के लिए बच्चों को टीकाकरण करा देना चाहिए।
5. रक्त के प्रत्यारोपण से पहले रक्त की भली-भांति जाँच करानी चाहिए।

**प्रश्न-3. प्राथमिक चिकित्सा क्या होती है? इसके आवश्यकता एवं सिद्धान्तों की चर्चा करें।**

**What is First Aid? Discuss its importance and principles.**

**उत्तर - प्राथमिक चिकित्सा**

किसी रोग के होने या चोट लगने पर किसी अप्रशिक्षित व्यक्ति द्वारा जो सीमित उपचार किया जाता है उसे प्राथमिक चिकित्सा (First Aid) कहते हैं। इसका उद्देश्य कम से कम साधनों में इतनी व्यवस्था करना होता है कि चोटग्रस्त व्यक्ति को सम्यक इलाज कराने की स्थिति में लाने में लगने वाले समय में कम से कम नुकसान हो। अतः प्राथमिक चिकित्सा प्रशिक्षित या अप्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा कम से कम साधनों में किया गया सरल उपचार है। कभी-कभी यह जीवन रक्षक सिद्ध होता है। यह विद्या प्रयोगात्मक चिकित्सा के मूल सिद्धान्तों पर निर्भर है। इसका ज्ञान शिक्षित पुरुषों को इस योग्य बनाता है कि वे आकस्मिक दुर्घटना या बीमारी के अवसर पर, चिकित्सा के आने तक या रोगी को सुरक्षित स्थान पर ले जाने तक, उसके जीवन को बचाने, रोगनिवृत्ति में सहायक होने, या घाव की दशा और अधिक निकृष्ट होने से रोकने में उपयुक्त सहायता कर सकें। प्राथमिक चिकित्सा पशुओं पर भी की जा सकती है।

### प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्य

कई बार आकस्मिक दुर्घटनाएं घातक एवं भयंकर हो सकती हैं। ऐसी स्थिति में यदि दुर्घटना होते ही तुरन्त दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति को आवश्यक सहायता दे दी जाएं तो उसका जीवन बचाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त चिकित्सा का एक उद्दश्य, रोगी अथवा घायल व्यक्ति को सान्तवना देना भी होता है। इससे रोगी का मनोबल बढ़ता है तथा वह अधिक नहीं घबराता।

प्राथमिक चिकित्सा सहायता मिल जाने से रोगी की दशा अधिक बिगड़ने से बच जाती है।

### प्राथमिक शिक्षा की आवश्यकताएं

कोई भी आकस्मिक दुर्घटना के घट जाने पर प्राथमिक सहायता की आवश्यकता निम्नलिखित रूप में पड़ती है। यदि -

1. व्यक्ति को श्वास लेने में कठिनाई का अनुभव हो रहा हो।
2. व्यक्ति के किसी भी अंग से रक्त बह निकले।
3. कोई व्यक्ति जानबूझकर अथवा अनजाने में किसी विष को अथवा जलाने वाली वस्तु को खा-पी जाए।
4. आग से जल जाने पर।
5. कोई व्यक्ति पानी में डूब जाए तथा उसके पेट में काफी पानी भर जाए और ऐसे व्यक्ति को पानी से बाहर निकाल लिया गया हो।
6. किसी विषैले जानवर अथवा कीट के काटने की स्थिति में।
7. किसी भी नशे का अधिक मात्रा में सेवन कर लिया गया हो।
8. चोट लगने अथवा गिर जाने से हड्डी टूट गई हो।
9. विद्युत का झटका लगा हो।
10. दिल का दौरा, पक्षाघात या कोई अन्य दौरा पड़ा हो।

इन आकस्मिक दुर्घटनाओं के अतिरिक्त किसी भी प्रकार की अन्य दुर्घटना के होते ही प्राथमिक सहायता की आवश्यकता पड़ती है।

### प्राथमिक चिकित्सा के मुख्य सिद्धान्त

प्राथमिक चिकित्सा एक व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक तरीके से किया जाने वाला कार्य है। अत. इसे करने के लिए कुछ मौलिक सिद्धान्तों एवं नियमों को जानना आवश्यक है। प्राथमिक चिकित्सा सहायता के मुख्य सिद्धान्त निम्नलिखित हैं -

1. **वास्तविकता ज्ञात करने का प्रयास** - दुर्घटना होते ही प्राथमिक चिकित्सा को वास्तविकता जानने का प्रयास करना चाहिए -

1. क्या शरीर की कोई हड्डी तो नहीं टूट गई?
2. यदि घाव हुए हैं तो कहाँ-कहाँ हुए हैं?
3. क्या शरीर का कोई अंग दबा या कुचला तो नहीं गया?
4. क्या व्यक्ति को साँस लेने में कठिनाई तो नहीं हो रही है?
5. क्या शरीर के किसी अंग से रक्त तो नहीं बह रहा है?
6. क्या कोई विष तो नहीं खाया गया है?

2. **चिकित्सक से सम्पर्क** - दुर्घटना यदि गम्भीर हो तो चिकित्सक से सम्पर्क करना चाहिए। सम्पर्क के लिए यदि सम्भव हो तो टेलीफोन से काम लेना चाहिए। अन्यथा किसी विश्वसनीय व्यक्ति को चिकित्सक के पास तुरन्त भेजना चाहिए।

3. **रोगी को कृत्रिम रूप से साँस दिलाना** - यदि रोगी की श्वास थम रही हो तो उसे कृत्रिम साँस देने या दिलाने का प्रयास करना चाहिए।

4. **रक्त बहने को रोकना** - यदि चोट अथवा किसी अन्य कारण से रक्त बह रहा हो तो रक्त स्राव को रोकने का प्रयास करना चाहिए, इसके लिए पट्टियाँ बांधी जा सकती हैं।

5. **शरीर को गर्म रखना** - यदि व्यक्ति घायल हो तथा शरीर से रक्त बह रहा हो और वह होश में हो तो उसे गर्म पेय दूध अथवा चाय पिलानी चाहिए।

6. **दवा लगाकर पट्टी बाँधना** - चोटग्रस्त स्थान पर शीघ्र ही कीटाणुनाशक दवा लगाकर पट्टी बाँध देनी चाहिए। इससे बाहरी रोगाणु प्रवेश नहीं कर पाते।

7. **घायल अंग को सहारा देना** - जिस भाग में मुख्य रूप से चोट लगी हो, उसे सहारा देकर आरामदायक स्थिति में रखना चाहिए, क्योंकि अंग के लटकने अथवा अस्त-व्यस्त रहने से अधिक पीड़ा होती है तथा रक्त भी अधिक बहता है।

8. **बेहोश व्यक्ति को अधिक न हिलाना-डुलाना** - यदि घायल हो तो उसे अधिक हिलाना-डुलाना नहीं चाहिए। इससे अधिक तकलीफ होती है।

9. **आसपास से भीड़ हटाना** - रोगी को स्वच्छ हवा मिल सके इसलिए उसके आसपास लगी भीड़ को हटा देना चाहिए। जो लोग पास रहें वे भी शान्त रहें और प्राथमिक सहायता करने में धीरज का परिचय दें।

10. **विष निकालने का प्रयास** - यदि विष की आशंका हो तो विष को निकालने का प्रयास करना चाहिए। यदि विष निकालना कठिन हो तो उसके प्रभाव को कम करने का प्रयास करना चाहिए।

**प्रश्न–4. प्राथमिक चिकित्सा उपचारक के गुण एवं दायित्वों का वर्णन करें।**

**Describe the qualities and responsibilities of First Aider.**

**उत्तर - प्राथमिक चिकित्सा उपचार करने वाले व्यक्ति के गुण**

उपयुक्त प्राथमिक करने वाले व्यक्ति को -

1. विवेकी (Observant), जिससे वह दुर्घटना के चिन्ह् पहचान सकें।





2. व्यवहारकुशल (Tactful), जिससे घटना सम्बन्धी जानकारी जल्द से जल्द प्राप्त करते हुए वह रोगी का विश्वास प्राप्त करें
3. युक्तिपूर्ण (Resourceful), जिससे वह निकटतम साधनों का उपयोग कर प्रकृति का सहायक बने
4. निपुण (Dexterous), जिससे वह ऐसे उपायों को काम में लाए कि रोगी को उठाने इत्यादि में कष्ट न हो
5. स्पष्टवक्ता (Explicit), जिससे वह लोगों की सहायता में ठीक अगुवाई कर सके
6. विवेचक (Discriminator), जिससे गंभीर एवं घातक चोटों को पहचान कर उनका उपचार पहले करें
7. अध्यवसायी (Persevering), जिससे तत्काल सफलता न मिलने पर भी निराश न हों तथा
8. सहानुभूतियुक्त (Sympathetic), जिससे रोगी को ढांढस दे सकें, होना चाहिए।

**प्राथमिक चिकित्सा उपचारक के दायित्व/प्राथमिक उपचार में आवश्यक बातें**

1. प्राथमिक उपचारक को आवश्यकतानुसार रोगनिदान करना चाहिए तथा
2. घायल को कितनी, कैसी और कहां तक सहायता दी जाए, इस पर विचार करना चाहिए।

**रोग या घाव सम्बन्धी आवश्यक बातें :-**

1. रोगी की स्थिति, इसमें रोगी की दशा और स्थिति देखनी चाहिए।
2. चिन्ह्, लक्षण या वृत्तांत, अर्थात् घायल के शरीरगत चिन्ह् जैसे सूजन, कुरुपता, रक्तसंचय इत्यादि प्राथमिक उपचारक को अपनी ज्ञानेन्द्रियों से पहचानना तथा लक्षण, जैसे पीड़ा, जड़ता, घुमरी, प्यास इत्यादि, पर ध्यान देना चाहिए। यदि घायल व्यक्ति होश में तो रोग का और वृत्तांत उससे, या आसपास के लोगों से, पूछना चाहिए। रोग के वृत्तांत के साथ लक्षणों पर विचार करने पर निदान में बड़ी सहायता मिलती है।
3. कारण : यदि कारण का बोध हो जाए तो उसके फल का बहुत कुछ बोध हो सकता है, परंतु स्मरण रहे कि एक कारण से दो स्थानों पर चोट, अर्थात् दो फल हो सकते हैं, अथवा एक कारण से या जो स्पष्ट फल हो, या कोई दूसरा फल, जिसका सम्बन्ध उस कारण से न हो, हो सकता है। कभी-कभी कारण बाद तक अपना काम करता रहता है, जैसे गले में फंदा इत्यादि।
4. घटनास्थल से सम्बन्धित बातें -

- खतरे का मूल कारण आग, बिजली का तार, विषैली गैस, केले का छिलका या बिगड़ा घोड़ा इत्यादि हो सकते हैं, जिसका ज्ञान प्राथमिक उपचारक को प्राप्त करना चाहिए।
- निदान में सहायक बातें, जैसे रक्त के धब्बे, टूटी सीढ़ी, बोतलें तथा ऐसी वस्तुओं को, जिनसे घायल की चोट या रोग से सम्बन्ध हो सुरक्षित रखना चाहिए।
- घटनास्थल पर उपलब्ध वस्तुओं का यथोचित उपयोग करना श्रेयस्कर है।
- दोहर, कंबल, छाते इत्यादि से बीमार की धूप या बरसात से रक्षा करनी चाहिए।
- बीमार को ले जाने के निमित्त प्राथमिक उपचारक को देखना चाहिए कि घटनास्थल पर क्या-क्या वस्तुएं मिल सकती हैं। छाया का स्थान कितनी दूर है, मार्ग की दशा क्या है। रोगी को ले जाने के लिए प्राप्त योग्य सहायता का श्रेष्ठ उपयोग तथा रोगी की पूरी देखभाल करनी चाहिए।

**प्रश्न-5. प्राथमिक चिकित्सा किट से आप क्या समझते हैं? विस्तार से चर्चा करें।**

**What do you understand by First Aid Kit? Discuss in detail.**

**उत्तर - प्राथमिक चिकित्सा किट (First Aid Kit)**

प्राथमिक चिकित्सा किट, आपूर्ति और उपकरणों का संग्रह है, जो प्राथमिक चिकित्सा के लिए प्रयुक्त होता है। प्राथमिक चिकित्सा किट विभिन्न सामग्रियों का बना होता है, जो इस पर निर्भर करता है कि किट को किसने संग्रहित किया और किस प्रयोजन से, सरकार और संगठनों द्वारा सुझाए गए विभिन्न परामर्शों या कानूनों के कारण भी इसमें प्रादेशिक विभिन्नताएं पाई जाती हैं।

**प्रारूप**

प्राथमिक चिकित्सा किट को किसी भी तरह के बक्से में रखा जा सकता है और वह इस बात पर निर्भर करता है कि उसका उत्पादन व्यावसायिक उद्देश्य के लिए किया जा रहा है या किसी व्यक्ति विशेष द्वारा जमा किया गया है।

मानक किट अक्सर टिकाऊ प्लास्टिक बक्सों, कपड़े की थैलियों या दीवारों पर टंगे छोटे बक्सों के रूप में मिलते हैं। बक्से की किस्म, उसके उद्देश्य पर निर्भर करती है, और उनका बटुए से लेकर किसी बड़े झोले जितना विशाल हो सकता है। यह सलाह दी जाती है कि किट को स्वच्छ, जलरोधी बक्से में रखा जाएं, ताकि सामग्री सुरक्षित और अपूर्तित रहे। किट कि नियमित रूप से जांच की जानी चाहिए और यदि कोई सामग्री क्षतिग्रस्त या पुरानी हो, तो उन्हें बदल देना चाहिए।

**रूप -**

**अन्तर्राष्ट्रीय मानकीकरण संगठन** (ISO) ने प्राथमिक चिकित्सा किट के लिए सफ़ेद रंग के क्रॉस के निशान सहित हरा रंग मानक निर्धारित किया है, ताकि प्राथमिक चिकित्सा के जरूरतमंद उसे आसानी से पहचान सकें।

जहां ISO ने हरी पृष्ठभूमि और सफेद क्रॉस के उपयोग की सलाह दी है, वहीं कुछ लोग या संगठन सफेद पृष्ठभूमि पर लाल रंग के क्रॉस का उपयोग करते हैं, लेकिन अंतर्राष्ट्रीय रेड क्रॉस समिति (ICRC) या उससे सम्बन्ध संस्थाओं के अतिरिक्त अन्य किसी के द्वारा इस प्रतीक का उपयोग, नियमों के तहत अवैध हो सकता है, क्योंकि **जेनिवा सम्मेलन** ने रेडक्रॉस को एक संरक्षित प्रतीक निर्दिष्ट किया है और वह दुनिया के समस्त राष्ट्रों द्वारा हस्ताक्षरित हैं। इसके कुछ अपवादों में उत्तरी अमेरिका शामिल हैं, जहाँ **जॉनसन एंड जॉनसन** कंपनी के पास इस प्रतीक को ट्रेड मार्क के रूप में अपने उत्पादों करने की अनुमति है और जिसने इस प्रतीक के इस्तेमाल को 1887 में पंजीकृत करवाया था।

कुछ प्राथमिक चिकित्सा किटों पर **जीवन का सितारा** चित्रित पाया जाता है, जोकि सामान्यतः **आपातकालीन चिकित्सा सेवाओं** से जुड़ा है, लेकिन इनका इस्तेमाल यह भी इंगित करने के लिए होता है कि इन सेवाओं का उपयोग करने वाले उपयुक्त समय पर उचित देखभाल भी कर सकते हैं।

**सामग्रियाँ**

1. प्राथमिक चिकित्सा किट में चिपकने वाली पट्टी सर्वाधिक प्रयुक्त वस्तुओं में एक है।
2. प्लास्टिक चिमटी।
3. आधुनिक प्राथमिक-चिकित्सा किटों में निस्तारणीय दस्ताने अक्सर पाए जाते हैं।





4. सामान्य खुदरा दुकानों में व्यावसायिक रूप से उपलब्ध प्राथमिक चिकित्सा किट परंपरागत रूप से मामूली चोटों के इलाज के लिए बनाए जाते हैं। विशिष्ट सामग्रियों में शामिल हैं, चिपकने वाली पट्टियां, नियमित शक्तिवर्धक दर्द की दवाएं, जालीदार कपड़े की पट्टी और निम्न दर्जे का रोगाणुनाशक।
5. विभिन्न क्षेत्रों, वाहन या गतिविधियों के लिए विशिष्ठ प्राथमिक चिकित्सा किट उपलब्ध हैं, जो क्रियाकलाप से जुड़े विशेष जोखिम या चिंताओं पर केंद्रित होते हैं। उदाहरण के लिए समुद्री आपूर्ति दुकानों द्वारा जलपोतों में बेचे जाने वाले प्राथमिक चिकित्सा किट में समुद्री-बीमारियों को ठीक करने के साधन होते हैं।

**वायु-पथ, श्वास और परिसंचरण**

प्राथमिक चिकित्सा **ABC** को उत्तम उपचार की बुनियादी मानती है। इसी कारण सबसे आधुनिक व्यावसायिक प्राथमिक चिकित्सा किट में (हालांकि ज़रूरी नहीं कि वे घर पर संग्रहित हों) उपयुक्त संक्रमण में पॉकेट मास्क, फेस शील्ड आदि शामिल हैं।

उन्नत प्राथमिक चिकित्सा किट में निम्न वस्तुएं भी शामिल हो सकती हैं :

- मुख-ग्रसनी सम्बन्धी वायु मार्ग
- नाक-ग्रसनी सम्बन्धी वायु मार्ग
- बैग वाल्व मास्क
- हस्तचालित चूषित या चूषण इकाई

**औज़ार और उपकरण** - आघात कैंची, कपड़े काटने के लिए और सामान्य उपयोगार्थ **कैंची** कम उपयोगी होते हैं, पर अक्सर उन्हें शामिल किया जाता है।

- चिमटी लाइटर, चिमटी या प्लायर आदि को जीवनरोधक बनाने के लिए

**अल्कोहल पैड**, उपकरण या स्वस्थ त्वचा को रोगाणुरहित करने के लिए इनका उपयोग कभी-कभी ज़ख्मों के क्षतशोधन में होता है, हालांकि कुछ प्रशिक्षण अधिकारी ऐसा न करने की सलाह देते हैं, क्योंकि इससे कुछ कोशिकाएं मर सकती हैं। जिनका बाद में बैक्टीरिया भक्षण कर सकते हैं।

तर करने वाला **सिरिंज**-नालशलाका नोक के साथ जख्मों को जीवनुरहित जल, लवणयुक्त घोल या मंद आयोडीन घोल से धोने के लिए।

पानी की तेज धार, गंदगी के कणों और कचरे को धो डालती है।

टॉर्च (फ्लैशलाइट के नाम से जानी जाती है।)

तुरंत काम करने वाला ठंडा रासायनिक पैक

**अल्कोहल लेपन (हस्त प्रक्षालक) या रोगाणुरोधक हाथ पोंछा**

- थर्मामीटर

स्पेस ब्लैंकेट (हल्के वज़न वाला प्लास्टिक फ़ाइल ब्लैंकेट, जो "आपातकालीन कंबल" के नाम से भी जाना जाता है)

- पेनलाइट

## प्राथमिक उपचार के मूल तत्व (Basic Elements of First Aid)

1. रोगी में श्वास, नाड़ी इत्यादी जीवन चिन्ह् न मिलने पर उसे तब तक मृत न समझें जब तक डाक्टर आकर न कह दें।
2. रोगी को तत्काल चोट के कारण से दूर करना चाहिएं।
3. जिस स्थान से अत्यधिक रक्स्राव हो तो हो उसका पहले उपचार करें।
4. श्वासमार्ग की सभी बाधाएँ दूर करके शुद्ध वायुसंचार की व्यवस्था करें।
5. हर घटना के बाद रोगी का स्तब्धता दूर करने के लिए उसको गर्मी पहुँचाएँ। इसके लिए कंबल, कोट, तथा गरम पानी की बोतल का प्रयोग करें।
6. घायल को जिस स्थिति में आराम मिले उसी में रखें।
7. यदि हड्डी टूटी हो तो उस स्थान को अधिक न हिलाएं तथा उसी तरह उसे ठीक करने की कोशिश करें।
8. यदि किसी ने विष खाया हो तो उसके प्रतिविष द्वारा विष का नाश करने की व्यवस्था करें।
9. जहाँ तक हो सके, घायल के शरीर पर कसे कपड़े ढीले कर दें, उतारने की कोशिश न करें।
10. जब रोगी कुछ खाने योग्य हो तब उसे चाय, कॉफी, दूध इत्यादि उत्तेजक पदार्थ पिलाएँ। होश में लाने के लिए स्मेलिंग साल्ट (Smelling Salt) सुंघाएँ।
11. प्राथमिक उपचारक को डाक्टर के काम में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, बल्कि उसके सहायक के रूप में कार्य करना चाहिए।

**प्रश्न-6. विभिन्न परिस्थितियों में प्राथमिक चिकित्सा में क्या सावधानियाँ ध्यान रखी जानी चाहिएं?**

**Which precautions should be kept in mind during first aid in various situations.**

**उत्तर - विभिन्न परिस्थितियों में ध्यान में रखी जाने वाली सावधानियाँ**

**क) सड़क पर चलते समय रखी जाने वाली सावधानियाँ :**

विद्यालय चाहे, वे गांव के हो या शहर के, प्रायः छात्र पैदल या साइकिल पर चढ़कर विद्यालय पहुँचते हैं। यदि समय रहते छात्रों को इन सावधानियों के बारे में बता दिया जाए तो सड़क पर होने वाली दुर्घटनाओं से बचा जा सकता है और बालक के जीवन को सुरक्षित बनाया जा सकता है -

1. बिजली का कार्य करते समय रबड़ के दस्ताने का प्रयोग करें।
2. बिजली के उपकरण को गीली स्थिति में कदापि प्रयोग न करें।
3. किसी भी तार के जोड़ को ढीला नहीं रहने दिना चाहिएं।
4. विद्यालय में बिजली के उपकरणों से छोड़छाड़ नहीं करनी चाहिएं।
5. हमेशा सड़क के बायीं ओर चलें और अपनी साइड का हमेशा ध्यान रखें।
6. बिजली के किसी भी तार को छूने से पहले मेन स्विच को बंद कर देना चाहिएं।
7. बिजली की नंगी तारों को कदापि नहीं छूना चाहिएं।





8. बिजली के किसी उपकरण का प्रयोग करते समय, मरम्मत करते समय पैरों में रबड़ के जूते या चप्पल अवश्य पहनें, सूखी लकड़ी अथवा बैंच पर खड़े होकर काम करें।

**ख) घर में सुरक्षा सम्बन्धी सावधानियाँ :**

घरों में चाकू, छूरी, सूई, ब्लेड, कुल्हाड़ी, दरांत आदि का प्रयोग होता रहता है। इसके अतिरिक्त घरों में चारा काटने, आटा बनाने, मक्खन बनाने, जूस या मसाला बनाने की हल्की मशीनों का भी प्रयोग होता रहता है। इनके उपयोग तथा प्रयोग के लिए भी सुरक्षा सावधानियों का पालन करना आवश्यक है जो निम्न प्रकार से हो सकता है -

1. बच्चों को तेज धार या नुकीली वस्तुओं का प्रयोग न करने दें।
2. इस प्रकार की मशीनों एवं पुर्जों का प्रयोग बच्चों को न करने दें।
3. घर पर पड़े किसी वाहन को बिना प्रयोग विधि जाने न छेड़ें।
4. घर में पानी की टंकी पर ताला लगाकर रखें।
5. प्रैस एवं कूलर आदि का प्रयोग बच्चों को न करने दें।
6. किसी भी बिजली उपकरण की सफाई तार हटा कर करें।
7. विषैली वस्तु या औषधि बच्चों से दूर रखें।

**(ग) विद्युत उपकरणों का प्रयोग करते समय सावधानियाँ**

शरीर के किसी भी भाग को विद्युत शक्ति की धारा लग जाने से विषम क्षति हो सकती है। ऐसी क्षति नंगी तथा विद्युत क्षतिग्रस्त तारों, लोहे से रेलों को छू जाने से या बादलों से बिजली गिरने के कारण भी हो सकती है।

**स्तब्धता (Shock) का प्राथमिक उपचार**

इसके अंतर्गत निम्नलिखित उपचार करना चाहिएं :-

1. यदि रक्तस्राव होता हो तो बंद करने का उपाय करें,
2. गर्दन, छाती और कमर के कपड़े ढीले करके खूब हवा दें,
3. रोगी को पीठ के बल लिटाकर सिर नीचा एक तरफ करें,
4. रोगी को अच्छी तरह कोट या कंबल से ढकें तथा पैर में गरम पानी की बोतल से सेक करें,
5. सिर में चोट न हो तो स्मेलिंग साल्ट सुंघाएँ और होश में आने पर गरम तेज चाय अधिक चीनी डालकर पिलाएँ।

**अस्थिभंग का प्राथमिक सामान्य उपचार**

1. अस्थिभंग (**Fracture**) वाले स्थान को पटरियों तथा अन्य उपायों के अचल बनाए बिना रोगी को स्थानांतरित न करें।
2. चोट के स्थान से यदि रक्तस्राव हो रहा हो तो प्रथमतः उसका उपचार करें।
3. बड़ी चौकसी के साथ बिना बल लगाए, अंग को यथासाध्य अपने स्वभाविक स्थान पर बैठा दें।
4. चपतियों (Splints), पट्टियों (Bandages) और लटकाने वाली पट्टियों, अर्थात् झोलों, के प्रयोग से भग्न अस्थिवाले भाग को यथासंभव स्वाभाविक स्थान पर बनाए रखने की चेष्टा करें।

5. जब संशय हो कि हड्डी टूटी है या नहीं, तब भी उपचार उसी भाँति करें जैसा हड्डी टूटने पर होना चाहिए।

**मोच (Sprains) का प्राथमिक उपचार :**

1. मोच के स्थान को यथासंभव स्थिर अवस्था में रखकर सहारा दें।
2. जोड़ को अपनी प्राकृतिक दशा में लाकर उस पर खींचकर पट्टी बाँधें और उसे पानी से तर रखें,
3. इससे भी आराम न मिलने पर पट्टी फिर से खोलकर बाँधें।

**रक्तस्राव का प्राथमिक उपचार :**

1. घायल को हमेशा ऐसे स्थान पर स्थिर रखें जिससे रक्तस्राव का वेग कम रहे
2. अंगों के टूटने की अवस्था को छोड़कर अन्य सभी अवस्थाओं में जिस अंग से रक्तस्राव हो रहा हो उसे ऊँचा रखें।
3. कपड़े हटाकर घाव पर हवा लगने दें तथा रक्तस्राव के भाग को अंगुली से दबाए रखें
4. बाहरी वस्तु, जैसे शीशा, कपड़े के टुकड़े, बाल आदि को घाव में से निकाल दें
5. घाव के आसपास के स्थान पर जीवाणुनाशक तथा बीच में रक्तस्राव विरोधी दवा लगाकर रुई, गाज (Gauze) या लिंट (Lint) रखकर बाँध देना चाहिएं।

**अचेतनावस्था का प्राथमिक उपचार :**

बेहोशी पैदा करने वाले कारणों से घायल को दूर कर देना अचेतनावस्था के उपचार के साधारण नियमों को यथासंभव काम में लाना चाहिए।

**डूबने, फाँसी, गलाघुटने तथा बिजली लगने का प्राथमिक उपचार :**

डूबे हुए व्यक्ति को कृत्रिम रीति से सर्वप्रथम श्वास करवाएं तथा गीले कपड़े उतारकर शरीर सुखे वस्त्रों में लपेटें। फाँसी लगाए हुए व्यक्ति के नीचे के अंगों को पकड़कर तुरंत शरीर उठा दें, ताके रस्सी का कसाव कम हो जाए। तब रस्सी काटकर गला छुड़ा दें। फिर कृत्रिम श्वास दें। गला घुटने की अवस्था में पीठ पर स्कैपुला (Scapula) के बीच में जोरों से मुक्का मारें और फिर गले में अंगुली डालकर उसे वमन कराने की चेष्टा करें। इसी प्रकार विषैली गैसों से दम घुटने पर दरवाजे, खिड़कियाँ, रोशनदान आदि खोलकर गैस बाहर निकाल दें और रोगी को श्वास द्वारा ऑक्सीजन देने का प्रयास करें। बिजली मारने पर तुरंत बिजली का सम्बन्ध तोड़कर रोगी को कृत्रिम श्वास दिलाएँ तथा उत्तेजक पदार्थों का सेवन कराएं।

**प्राथमिक चिकित्सा की सीमा :**

**प्राथमिक उपचार आकस्मिक दुर्घटना के अवसर पर उन वस्तुओं से सहायता करने तक ही सीमित है जो उस समय प्राप्त हो सके। प्राथमिक उपचार का यह ध्येय नहीं है कि प्राथमिक उपचारक चिकित्सक का स्थान ग्रहण करें। इस बात को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि चोअ पर दुबारा पट्टी बाँधना तथा उसके बाद का दूसरा इलाज प्राथमिक उपचार की सीमा के बाहर है। प्राथमिक उपचार का उत्तरदायित्व किसी डाक्टर द्वारा चिकित्सा संबंधी सहायता प्राप्त होने के साथ ही समाप्त हो जाता है, परंतु उसका कुछ देर तक वहाँ रुकना आवश्यक है, क्योंकि डाक्टर को सहायक के रूप में उसकी आवश्यकता पड़ सकती है।**





निष्कर्ष

यह स्पष्ट है कि प्राथमिक उपचार या सहायता का अपना विशिष्ट महत्व है, जो किसी भी रूप में डाक्टरी सहायता से कम नहीं होता। प्राथमिक चिकित्सा एक सामान्य व्यक्ति भी दे सकता है, परन्तु इसके लिए उस व्यक्ति में कुछ उचित गुण होने चाहिएं। अतः प्राथमिक चिकित्सा हमारे दैनिक जीवन के बहुत ही आवश्यक है।

प्रश्न-7. **योग से आप क्या समझते है? व्यक्ति के जीवन में इसका क्या महत्व है?**
**What do you understand by Yoga? What is its importance in human life?**

उत्तर - वर्तमान समय आधुनिकता का युग कहलाता है। जहाँ दिन प्रतिदिन व्यक्ति की जीवन शैली बदल रही है। इस बदलते व दौड़-भाग भरे जीवन ने व्यक्ति को शारीरिक रूप से अस्वस्थ तथा मानसिक रूप से तनाव ग्रस्त बना दिया है। ऐसे में वह पुरातन पथ जो जीवन को स्वस्थ रूप से जीने की राह बताता है, मनुष्य वापस उसकी ओर लौट रहा है। यह पुरातन पथ कुछ और नहीं बल्कि योग है जो व्यक्ति को जीवन जीने की वास्तविक शैली सिखाता है।

योग का अर्थ :- योग शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत भाषा की 'युज्' धातु से हुई है जिसका अर्थ है युक्त करना, जोड़ना या मिलाना।

योग की परिभाषाऐं :- विभिन्न विद्वानों ने समय-समय पर इसके अर्थ को स्पष्ट करने के लिए परिभाषाएँ दी हैं। इनमें से कुछ परिभाषाऐं इस प्रकार है :-

1. महर्षि पतंजलि ने **योग शास्त्र में कहा है :- 'योगश्चित्तवृत्तिः निरोधः'** अर्थात् चित्त की वृत्तियों (प्रमाण, विकल्प, विपर्यय, निद्रा, स्मृति) के पीछे दौड़ने से रोकना योग है।
2. भगवद्गीता में **भगवान श्री कृष्ण द्वारा योग का अर्थ समझाते हुए कहा गया है-** 'समत्वं योगः उच्यते' अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा का एकीकरण ही योग है। इसी ग्रन्थ के छठे अध्याय में वे पुनः कहते है :- 'योगः कर्मसु कौशलम्' अर्थात् प्रत्येक कार्य को कुशलता से सम्पन्न करना योग है।
3. **वेदान्त के मतानुसार :-** "जीव और आत्मा के मिलन की संज्ञा ही योग है।"
4. **योग वशिष्ठ के अनुसार :-** "संसार-सागर से पार होने की युक्ति को ही योग कहते है।"
5. **डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन् के अनुसार :-** "योग वह पुरातन पथ है जो व्यक्ति को अँधेरे से प्रकाश में लाता है।"

**योग का महत्व एवम् उपयोगिता**

योग व्यक्ति को जीवन जीने की कला सिखाता है। यह व्यक्ति के जीवन से सम्बन्धित प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित करता है। योग के महत्व को निम्नलिखित प्रकार से समझा जा सकता है :-

**(I) शारीरिक महत्व :-**

शरीर को हष्ट-पुष्ठ बनाने, उसके अंग-प्रत्यंगो की कार्य क्षमता में वृद्धि करने तथा उसे निरोगी बनाए रखने में योग की भूमिका अति महत्वपूर्ण है। शरीर को कांतिमय बनाने में योग-साधना का कोई सानी नहीं। इससे शरीर को होने वाले लाभों को निम्न बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है -

1. योग सम्बन्धी प्राणायाम द्वारा हमारे फेफड़ों की फैलने व सिकुड़ने की शक्तियों में वृद्धि होती है। जिससे अधिक से अधिक ऑक्सीजन अन्दर जाती है तथा रक्त शुद्ध होता है।
2. शारीरिक थकावट को दूर करने, शारीरिक शक्ति को प्राप्त करने एवं निरोग तथा स्वस्थ रहकर दीर्घायु बनाने के कार्य में भी योग बहुत अधिक लाभदायक है।
3. श्वास क्रिया को नियंत्रित करने में योग सहायक है।
4. योग रक्त के दबाव व हृदय की गति में सन्तुलन स्थापित करता है।
5. पाचन क्रिया को सुचारू रखने में योग द्वारा पूरी सहायता मिलती है
6. योग द्वारा शरीर की मांसपेशियाँ अधिक लचीली हो जाती है। जिससे इनमें कड़ापन न रहने के कारण ये अधिक शक्तिशाली भी हो जाती है।
7. योग साधना द्वारा शरीर की रोगनाशक और कीटाणुओं से दूर कर शरीर की रक्षा करता है।
8. विभिन्न प्रकार के रोगों का शिकार होने की दशा में, योग साधना के रूप में अपनाई जाने वाली पद्धति उपयुक्त लाभ पहुँचाने का कार्य करती है।
9. शरीर की आन्तरिक प्रणालियों की पूरी सफाई रखने में भी योगसाधना महत्वपूर्ण स्थान रखती है।
10. शरीर में विभिन्न रस द्रव्यों का निर्माण करने वाली ग्रंथियों को ठीक प्रकार नियंत्रित कर उन्हें पर्याप्त रूप से सजग एवं क्रियाशील बनाए रखने में सहायता मिलती है।

**(II) मानसिक महत्व :**

योग केवल शारीरिक स्वास्थ्य ही प्रदान नहीं करता बल्कि यह मानसिक रूप से स्वस्थ रहने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से योग के महत्व को निम्न बिन्दुओं द्वारा समझा जा सकता है :-

1. योग व्यक्ति के शरीर को स्वस्थ बनाता है और स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का प्रादुर्भाव स्वतः ही हो जाता है।
2. योग व्यक्ति की ज्ञानेन्द्रियों को सबल व क्षमता युक्त बनाती है।
3. योग द्वारा मनुष्य के मस्तिष्क की धारण क्षमता (यादाश्त) बढ़ती है।
4. योग मन की चंचलता को नियंत्रित कर ध्यान को एकाग्रचित्त करने में सहायक है।
5. मन तथा मस्तिष्क एकाग्र होकर एक निश्चित दिशा में कार्य करने के योग्य बनते है।
6. योग द्वारा मन विभिन्न प्रकार के विकारों से दूर होकर निर्मल बन जाता है।
7. योग व्यक्ति की चिंतन क्षमता, तर्क शक्ति, विचार शक्ति तथा निरीक्षण की क्षमता में वृद्धि करता है।
8. योग हमारी स्मरण क्षमता में अमूल्य वृद्धि करता है।
9. योग व्यक्ति में उपयुक्त व सन्तुलित संवेदनाओं का विकास करने में सहायक है।

**(III) नैतिक महत्व :**

योग साधना व्यक्ति के नैतिक स्तर को निम्न प्रकार से ऊँचा उठाती है :-

1. योग साधना व्यक्ति की इन्द्रियों को नियंत्रित करने में सहायता करती है जिससे व्यक्ति नाशवान्





भौतिक पदार्थों के पीछे न भागकर पथ भ्रष्ट नहीं होता है।
योग व्यक्ति को निर्मल चित्त प्रदान करता है जिससे व्यक्ति दूषित विचारों से दूर रहता है। यह योग साधना की अमूल्य देन है।
योगी व्यक्ति स्वार्थ भावना से दूर हो जाता है तथा परमार्थ के लिए कार्य करता है।
योगी व्यक्ति सदैव शुद्ध व सादा भोजन करता है जिससे उसकी प्रकृति सात्विक हो जाती है और वह नशे व मांसाहार आदि से दूर रहता है।
क्रोध व्यक्ति के विनाश तथा लड़ाई-झगड़ों का कारण होता है परन्तु योग-साधना द्वारा व्यक्ति क्रोध पर नियंत्रण करना भी सीख लेता है। जिससे दूसरों की आलोचना का शिकार नहीं होता।
योग व्यक्ति को काम, क्रोध, लोभ तथा मोह से दूर करके जीवन को अधिक नैतिक बनाने में सहायक है।
घृणा, ईर्ष्या आदि बुराईयाँ योगी के हृदय में प्रवेश नहीं कर पाती हैं।
योग व्यक्ति के संवेगों को संतुलित करने में सहायक है। संवेग ही व्यक्ति को गलत राह पर ले जाते है।
यम, नियम, प्रत्याहार तथा समाधि आदि व्यक्ति के नैतिक पक्ष को उन्नत बनाती हैं।
योग व्यक्ति में दया, सहानुभूति, ईमानदारी, प्रेम व सहयोग आदि नैतिक गुणों को पल्लवित करता है।

**(IV) सामाजिक महत्व :**

योग केवल व्यक्तिगत दृष्टि से ही लाभकारी नहीं है, बल्कि यह सामाजिक दृष्टि से भी उतना ही महत्वपूर्ण है। सामाजिक दृष्टि से योग के महत्व निम्नलिखित है :-

व्यक्तियों से ही मिलकर समाज बनता है और योगी व्यक्ति अपनी ही तरह स्वस्थ समाज का निर्माण करने में सुयोग सिद्ध हो सकता है।

सामाजिक बुराइयों जैसे छल, कपट, धोखाधड़ी, नशीले पदार्थों का सेवन, रिश्वतखोरी, कालाबाजारी, हिंसा, मारकाट तथा अन्य इन्द्रिय जनित और सांसारिक विषयों की आसक्ति से सम्बन्धित अपराधों की संख्या में कमी लाने के कार्य में भी यौगिक पथ अमूल्य सहयोग प्रदान कर सकता है।

आज समाज के सामने नैतिक मूल्यों को कायम रखने का जो संकट है और आपसी वैमनस्य, ईर्ष्या, शत्रुता और घृणा का जो वातावरण घर-बाहर, देश-विदेश में व्याप्त है उसे यौगिक साधना द्वारा सुझाए गए प्रेम, सहयोग, शांति, संयम, धैर्य, सहिष्णुता साधना और सच्चाई के मार्ग से ही सहज और सुखमय बनाया जा सकता है।

अति भौतिकतावादी युग की इस दौड़ में जहाँ आज व्यक्ति अपने जीवन के वास्तविक उद्देश्य से भटक चुका है वह योग साधना व्यक्ति के पथ को प्रकाशित कर उसे सही राह दिखाती है। जिससे एक सुखी व आनन्दमय समाज का निर्माण किया जा सकता है।

**(V) आध्यात्मिक महत्व :**

योग-साधना व्यक्ति को शरीर एवं मन से कहीं अधिक ऊपर ले जाकर आध्यात्मिक प्रगति का रास्ता

दिखाती है। योग द्वारा प्राप्त आध्यात्मिक लाभों के निम्न रूप हो सकते हैं :-

1. योग द्वारा व्यक्ति की आत्मा तथा परमात्मा का मिलन होता है जिससे व्यक्ति अपने आप को उस अलौकिक सत्ता से जुड़ा हुआ अनुभव करता है।
2. योग साधना व्यक्ति को अपने आप से परिचित कराती है।
3. योगी प्रत्येक जीव में उसी अलौकिक सत्ता के दर्शन करने लगता है।
4. योग व्यक्ति में अलौकिक शक्तियों को जागृत करने मे भी सहायक है।
5. सृष्टि ईश्वरमय है, सभी प्राणी उसी परमात्मा के अंश हैं तथा हमें सभी के प्रति और आदरभाव रखने चाहिए, ऐसे विचार योगी के मन में उत्पन्न होते हैं।
6. योग साधना द्वारा व्यक्ति को जीवन का अंतिम लक्ष्य का ज्ञान होता है। जो आत्मा का परमात्मा से मिलन अथवा मोक्ष प्राप्ति है।
7. योग साधना व्यक्ति को परमात्मा से मिलन के लिए दैवीय शक्ति प्रदान करती है।

इस प्रकार अंत में निष्कर्ष के रूप में हम यह कह सकते है कि वर्तमान दौड़-भाग तथा तनाव ग्रस्त जीवन में योग साधना व्यक्ति के लिए उतनी ही मूल्यवान है जितना की रेगिस्तान में पानी। यह हमारी संस्कृति व सभ्यता की डूबती हुई नाव को उभारने की शक्ति रखता है। योग कराहती हुई देह में नव जीवन संचार के समान है।

**प्रश्न-8. योग के दार्शनिक आधार से आप क्या समझते हैं। षड् दर्शन की व्याख्या करें।**

**What do you understand by philosophical base of Yoga? Discuss the Shatt Darshan.**

उत्तर - योग का दर्शनिक आधार या षड्दर्शन

दर्शन् शब्द की उत्पति संस्कृत की 'दृश' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है देखना। अतः योगदर्शन से अभिप्राय उस दृष्टि से है जिसके द्वारा योग के सिद्धान्त का जन्म हुआ।

**भारतीय दर्शन के अनुसार 6 दर्शनों की चर्चा की गई है।**

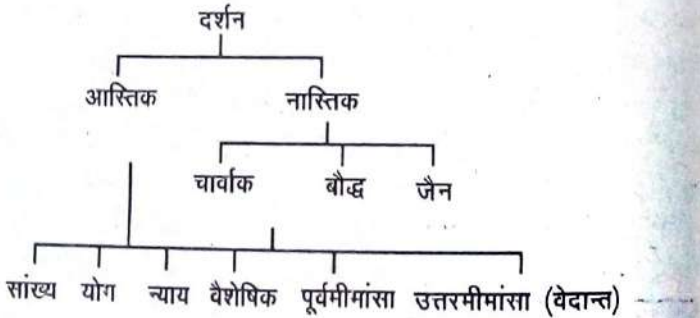


**षड्दर्शन**

1. न्याय दर्शन
2. वैशेषिक दर्शन





3. सांख्य दर्शन
4. योग दर्शन
5. मीमांसा दर्शन
6. वेदान्त दर्शन

**दर्शन का शाब्दिक अर्थ है**-देखना, यह तो साधारण अर्थ हुआ जो हम आँखो से देखकर अनुभव करते है भारतीय दर्शन के अनुसार दर्शन का अर्थ है **वह माध्यम जिसके द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जाता है** स्मृतियों में सम्यक् दर्शन और आत्म दर्शन का उल्लेख किया गया है भारतीय दर्शन में यह जानने का प्रयास किया गया है कि संसार क्या है? जीवन-मृत्यु का रहस्य क्या है-सुख-दुख का क्या कारण है? मेरा अस्तित्व क्या है? आदि भारत में दर्शन की जिन विभिन्न शाखाओं का विकास हुआ उनके आधार पर दर्शनों की संख्या 12 निर्धारित की गई है इन बारह दर्शनों में छह नास्तिक दर्शन (चार्वाक, बौध्यमिक, योगाचार, सैद्धांतिक, वैभाषित तथा आर्हत) तथा छह आस्तिक दर्शन (न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा तथा वेदान्त) है।

## भारतीय दर्शन के मूल तत्व एवं विशेषताऐं

1. आध्यात्मिक खोज
2. मोक्षवाद
3. आत्मा सम्बन्धी कल्पना
4. मुक्ति
5. कर्म तथा ज्ञान का समन्वय
6. भौतिक तथा पारलौकिक सुख का समन्वय
7. दर्शन तथा धर्म का गहरा सम्बन्ध
8. चिन्तन का महत्व
9. अध्यात्मपरकता
10. पुनर्जन्म के प्रति आस्था
11. सर्वथा आशावादी

उपनिषद् दर्शन : उपनिषदों में वेदों की दार्शनिक व्याख्या की गई है, उपनिषदो की कुल संख्या 108 बताई जाती है, जिनमें बारह प्रमुख हैं- केनोपनिषद, कठोपनिषद, माण्डूक्योपनिषद्, ऐतरेय उपनिषद्, छांदोग्योपनिषद्, आदि उपनिषद्रों का रचनाकाल 1000 ई पू° से 300 ई तक माना जाता है वेदों के तीन भाग हैं- कर्म, उपासना, तथा ज्ञान, उपनिषद्रो में ज्ञान को मोक्ष का साधन माना गया है। उपनिषदो के अनुसार दो प्रकार का ज्ञान होता है - **परा और अपरा** वेद और वेदांग अपरा ज्ञान के स्रोत है जिस ज्ञान के ऊपर ब्रह्म का ज्ञान होता है **उसे** पराज्ञान कहते है, उपनिषदो में **पराज्ञान** को श्रेष्ठ माना गया है।

ब्रह्मविद्या के अभाव को अविद्या कहते है, मुण्डकोनिषद् के अनुसार अज्ञानी पुरुष अहंकारी होने के कारण रागासक्त हो जाते हैं, जो पुरुष अविद्या कर्म की उपासना करते हैं, सांसारिक अज्ञान में प्रवेश

करते हैं।

**प्रकृति द्वारा स्वयं को अभिव्यक्त करने वाले तत्व :-**

1. चार देहधारी - उद्भिज, अखण्ड, स्वदेज और जरायुज
2. पाँच कर्मेन्द्रियाँ -वाक्, हस्त, पाद, वायु और उपस्थ
3. नौ ज्ञानेंद्रियाँ -चक्षु, घ्राण, जीह्वा, वृक्, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार
4. विषय

नित्य, शाश्वत तथा पुरातन माना गया है तथा ब्रह्म को सत्, ज्ञानमय, ज्ञेय तथा ऐक्य माना गया है, जीव वैयक्तिक आत्मा है और आत्मा परम आत्मा मुण्डकोपनिषद में ब्रह्म और जगत का सम्बन्ध । बताते हुए लिखा है कि जिस प्रकार मकड़ी अपने अन्दर से तन्तु निकाल कर जाल बनाती है और फिर अपने में समेट लेती है उसी प्रकार ब्रह्म से जगत की उत्पत्ति होती है उपनिषदों में मोक्ष को जीवन का अंतिम लक्ष्य माना है।

**गीता दर्शन :** गीता में भगवान श्रीकृष्ण द्वारा कुरूक्षेत्र में अर्जुन को दिए गए ज्ञान उपदेश का वर्णन है गीता में कहा गया है कि जीव की न तो मृत्यु होती है और न ही जन्म होता है आत्मा अजर-अमर है जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्र धारण करता है उसी प्रकार आत्मा भी पुराना शरीर त्यागकर नया शरीर धारण करती है और तत्व ज्ञान की प्राप्ति के मार्ग में आगे बढ़ती है।

गीता में सुझाए गए सभी मार्ग समन्वयात्मक है, गीता मोक्ष प्राप्ति के किसी मार्ग का तिरस्कार नही करती, गीता प्रत्येक मार्ग का तिरस्कार नही करती, गीता प्रत्येक मार्ग के साथ कर्मयोग को जोड़ देती है गीता में भारतीय दर्शन के परम लक्ष्य ब्रह्मप्राप्ति और कर्म के व्यावहारिक पक्ष को बोधगम्य शब्दों में व्याख्या की है।

**गीता के अनुसार** समत्व का नाम योग है **समत्वं योगः उच्चयते** और कर्म कुशलता को ही योग कहते है गीता के छठे अध्याय मेंयोगी को तपस्वियों से, कर्म-काण्डियों से और ज्ञानियों से श्रेष्ठ माना गया है, योगनिष्ठ योग ही कर्मयोग है गीता में ज्ञान से एकनिष्ठ हो जाने पर बल दिया है ज्ञान से बढ़कर पवित्र करने वाला कुछ भी नहीं है, ज्ञानाग्नि सम्पूर्ण कर्मो को भस्मसात् कर देती है।

गीता ब्रह्म विद्या है क्योंकि इसमें उपनिषदों का सार है गीता में उस योग का प्रतिपादन किया गया है जिससे ब्रह्मतत्व से साक्षात्कार किया जा सकता है। गीता का विषय **योग-भक्ति, ज्ञानयोग** एवं **कर्मयोग** है। ये तीनों ही योग एक-दूसरे के पूरक है। ज्ञान तथा भक्ति से निरपेक्ष कर्म, ज्ञान, तथा कर्म से निरपेक्ष -भक्ति और भक्ति तथा कर्म से निरपेक्ष ज्ञान फलदायक नही है।

गीता के अनुसार कर्म मार्ग पर प्रवृत्त होने वाले व्यक्ति के मन से अपने पराए की भावना मूल से नष्ट हो जाती है गीता में मोक्ष प्राप्ति के मार्ग बताए गए हैं- **एक तो ज्ञान से, दूसरे निष्काम कर्म से।**

**चार्वाक दर्शन :** चार्वाक दर्शन भौतिकवादी दर्शन है इसमे ईश्वर, परलोक, स्वर्ग-नरक तथा आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार नही किया गया है। इस दर्शन में संसार को जीव का क्रीडास्थल माना गया है इसमें भौतिक सुखों को ही प्रधानता दी गई है चार्वाक के अनुसार जीवन के लिए ही विषयों और सुख की चिन्ता करनी चाहिए। चार्वाक ने अध्यात्म और पाप -पुण्य को निरर्थक बताते हुए दृश्य जगत के चार





तत्व बताए हैं - पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु। जीव की उत्पत्ति इन चारो के संयोग से ही होती है। और इन तत्वों के असहयोग से जीव नष्ट हो जाता है। प्रारम्भ में **चार्वाक** दर्शन का नाम **लोकायत** था, इस दर्शन को **वैतंड़िक** भी कहा जाता है। क्योकि इसके मानने वाले अपने मत के समर्थन की पुष्टि करने की अपेक्षा दूसरे मतो का खण्डन ही किया करते थे, इस मत के प्रवर्तक बृहस्पति के शिष्य चार्वाक थे, इसीलिए इसे चार्वाक दर्शन कहा गया, खाओ पियो और मौज उड़ाओ, चार्वाक दर्शन का सिद्धान्त था चार्वाक दर्शन में जीवन का मुख्य उददेश्य दृश्य की प्राप्ति तथा भोग माना है। चार्वाकों के अनुसार वेदो के निर्माता धूर्त और निशाचर थे चार्वाक दर्शन का मूल ग्रंथ **बार्हस्पत्यसूत्र** उपलब्ध नही है लेकिन सर्वदर्शन संग्रह के प्रथम अध्याय में इसके सिद्धान्त लिखे गए है।

**षड्-दर्शन :** भारतीय दर्शन में छह दर्शन प्रमुख है जिन्हे षड-दर्शन कहा गया है ये षड्-दर्शन है - न्याय दर्शन,सांख्य दर्शन, योग दर्शन, वैशेषिक दर्शन, पूर्व मीमांसा दर्शन, और उत्तर मीमांसा दर्शन

**न्याय दर्शन :** न्याय दर्शन के प्रवर्तक गौतम ऋषि थे, जो छठी शताब्दी में मिथिला में हुए थे उन्होने न्याय दर्शन का प्रतिपादन अपने ग्रन्थ न्यायसूत्र में किया था, हालाकि न्यायसूत्र में उनका लक्ष्य परम तत्व की प्राप्ति है तथापि इसमें प्रणाली द्वारा तर्क किए जाने की विधि समाविष्ट है।

न्याय दर्शन के अनुसार जिन वस्तुओं की सत्ता है वे सभी ज्ञेय है और जो ज्ञेय नही है उनका कोई अस्तित्व नही है। न्याय दर्शन के तत्व है- (1) प्रमाण (2) प्रमेय (3) संशय (4) प्रयोजन (5) सिद्धान्त (6) तर्क (7) वाद (8) वितण्डा (9) छल (10) निग्रह स्थान (11) दृष्टांत (12) अवयव (13) निर्णय (14) जल्प (15) हेत्वा भास (16) जाति। उपयुक्त तत्वों में प्रमाण तथा प्रमेय प्रधान तत्व है, शेष सभी गौण, प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, तथा शब्द ही ज्ञान के साधन है न्याय के संवाक्य के पाँच भाग है - प्रतिस्थापना, कारक, दृष्टांत, कारण की पुनरावृत्ति और निष्कर्ष प्रमाण द्वारा प्राप्त ज्ञान प्रमेय कहलाता है। न्याय दर्शन में बारह पदार्थ ज्ञातव्य माने गए है।

**वैशेषिक दर्शन :** वैशेषिक दर्शन और न्याय दर्शन में समानता है वैशेषिक दर्शन न्याय दर्शन से उच्च कोटि का प्रतीत होता है। न्याय दर्शन में प्रमाणों को विचार की प्रधानता है जबकि वैशेषिक दर्शन में प्रमेयो के विचार की प्रधानता है। वैशेषिक दर्शन के प्रवर्तक कणाद थे। ऐसा कहा जाता है कि वैशेषिक दर्शन पर रावण ने भाष्य लिखा पदार्थ धर्म संग्रह वैशेषिक दर्शन का प्रमुख ग्रन्थ है बारहवी सदी में वैशेषिक दर्शन पर बल्लभाचार्य ने न्यायलीलावती नामक ग्रन्थ लिखा।

वैशेषिक दर्शन में सभी वस्तुए सात पदार्थों (द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय तथा अभाव) में विभक्त की गई है। वैशेषिक दर्शन में गुणो की संख्या चौबीस निर्धारित की गई है।

वैशेषिक दर्शन की सर्वप्रमुख विशेषता परमाणुवाद है अर्थात् जगत परमाणुओं से ही निर्मित हुआ है अग्नि तथा पृथ्वी के परमाणुओ से और ईश्वर के ध्यान मात्र से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति मानी गई है और यह प्रतिपादित किया गया है कि ईश्वर जगत और ब्रह्मा को उत्पन्न करता है। वैशेषिक मत के अनुसार कार्य-द्रव्य का नाश हो जाता है और वे परमाणु रूप में आकाश में रहते है यह प्रलय की अवस्था है संसार में जितनी वस्तुएं उत्पन्न होती है वे सभी उत्पन्न हुए जीवों के भोग के लिए ही है। पूर्व जन्मों के प्रभाव से जीव संसार में उत्पन्न होता है एक विशेष प्रकार के कर्मो का भोग करने के लिए जीव का जन्म होता है भोग के अनुकूल ही उसका शरीर ,योनि, कुल आदि होते

है जब विशेष भोग समाप्त हो जाता है तब जीव की मृत्यु हो जाती है।

वैशेषिक दर्शन में ज्ञान के दो रूप होते है - **विद्या और अविद्या** , अविद्या के चार भेद होते है - संशय, विपर्यय, अध्यवसाय तथा स्वप्नविद्या भी चार प्रकार की मानी गई है - प्रत्यक्ष, अनुमान, स्मृति, तथा आर्ष वैशेषिक दर्शन में कायिक चेष्टाओ को ही कर्म कहा गया है।

**सांख्य दर्शन** : सांख्य दर्शन के प्रवर्तक कपिल थे जो उपनिषदकालीन ऋषि थे, पाँचवी सदी में ईश्वर, कृष्ण द्वारा रचित सांख्यकारिक। सांख्य दर्शन का प्रथम प्रामाणित ग्रन्थ माना जाता है।

मूल प्रकृति, सात कोटियाँ, पाँच तन्मात्राऐं, सोलह विकार, पाँच ज्ञानेद्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच तत्व ,तेरह कारण, पाँच विपर्यय, नौ प्रकार की तुष्टि, सांख्य दर्शन के मूल तत्व हैं।

सांख्य दर्शन में संसार में दो सत्ताओं को स्वीकार किया गया है - प्रकृति और पुरूष, सांख्य दर्शन की प्रमुख धाराणाओं में तीन गुणो-सत्व, रज और तम को शामिल किया गया है ये गुण विभिन्न अनुपात में मिलकर प्रकृति की विभिन्न चीजों का निर्माण करते है सांख्य दर्शन में प्रकृति को अनादि एवं अन्नत कहा गया है पुरूष किस प्रकार प्रकृति के चुंगल में फँस जाता है?

**सांख्य दर्शन**

सांख्य -दर्शन प्राचीन भारतीय आस्तिक षड्दर्शनों में सबसे प्राचीन शाखा मानी जाती है। सांख्य -दर्शन में किसी सृष्टिकर्ता ईश्वर की अपेक्षा प्रकृति अथवा सृष्टि को ही स्वयं एक स्वतन्त्र सत्ता के रूप में स्वीकार किया गया है, जो पुरूष अर्थात् आत्मा के सम्पर्क में आकर सृष्टि की रचना करती है। अतः यह द्वैतवादी दर्शन है। सांख्य -दर्शन में आत्मा को किसी सर्वात्मा अथवा ब्रह्म का अंश नही माना जाता, अपितु सभी आत्माओं का स्वतन्त्र अस्तित्व स्वीकार किया गया है सांख्य दर्शन द्वैत दर्शन के रूप में प्रतिपादित किया जा सकता है। क्योकि उसमें दो स्वतन्त्र सत्ताओं को स्वीकार किया गया है **प्रथम पुरूष** तथा **द्वितीय प्रकृति**। प्रकृति ही संसार का आदि (प्रारंभिक) कारण है सत्व, रजस्, तथा तमस् इसके तीन गुण है।

**पुरूष**- पुरूष अथवा आत्मा जो एक है, जिसका न आदि है न अंत, जो न किसी तत्त्व से निर्मित होता है और न उससे कोई तत्त्व बनता है, जो चैतन्य रूप है, सूक्ष्म है, सर्वव्यापी है, निर्गुण है, अपरिवर्तनशील है, प्रकृति का ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष को प्राप्त करता है और जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा प्राप्त कर लेता है।

**प्रकृति**- कपिल मुनि के अनुसार प्रकृति के 24 तत्त्व हैं जो निम्न प्रकार हैं-

**पाँच ज्ञानेद्रियाँ**- आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा।

**पाँच कर्मेद्रियाँ**- मुँह, हाथ, पैर, उपस्थ और गुदा।

**पाँच तन्मात्राएँ**- रूप, शब्द, गंध, रस और स्पर्श।

**पाँच स्थूलभूत**- आकाश, वायु, जल, पृथ्वी और अग्नि।

**मन, बुद्धि, अंहकार और मूल प्रकृति**- प्रकृति इन 24 तत्त्वों के साथ मिलकर, अपने तीनों गुणों-सत्व, रजस और तमस की न्यूनाधिकता के कारण विश्व के विभिन्न पदार्थों की उत्पत्ति का कारण बनती है।

सांख्य योग में प्रकृति और पुरूष दो तत्त्वों का ही विश्लेषण किया गया है, सृष्टि का





मूलाधार इन्हें ही माना गया है, अतः सांख्य योग को द्वैतवादी भी माना जाता है।

4. **योग दर्शन** - योग दर्शन के प्रवर्तक **'महर्षि पतंजलि'** है। इस दर्शन में योग अर्थात् यौगिक क्रियाओं द्वारा चित्त (मन) को नियंत्रित करने के विषय में बताया गया है। इसमें क्रियात्मक पक्ष अधिक है। इस दर्शन में यौगिक क्रियाएँ करके किस प्रकार समाधि अवस्था से गुजरते हैं, का उल्लेख मिलता है।

यह दर्शन वस्तुतः सांख्यदर्शन के ही सिद्धान्तों को स्वीकार करता है, अन्तर केवल इतना है कि यह ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करता है, सांख्य नहीं। इसी कारण कुछ विद्वान् इसे सेश्वर सांख्य के रूप में भी उद्धत करते हैं।

योगसूत्र के आरम्भ में ही योग की परिभाषा देते हुए कहा गया है - **'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'** अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध करना ही योग है। प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा तथा स्मृति ये चित्त की पांच प्रवृतियाँ हैं। योगसूत्र में योग के आठ अंगों का उल्लेख किया गया है - यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इनके निरन्तर अभ्यास के द्वारा चित की वृत्तियाँ स्वतः विलीन हो जाती है। उस स्थिति में चित्त की एकाग्रता से कैवल्य की प्राप्ति होती है।

## पूर्व मीमांसा दर्शन

षड़ दर्शनों में जैमनीय **मीमांसा दर्शन** सर्वाधिक प्राचीन और वृहत है, इस पर अनेक विद्वानों द्वारा भाषय लिखे गये हैं। विस्तार पूर्वक मीमांसा की चर्चा भी हुई है मीमांसा के जिज्ञासु विद्यार्थियों को कम समय में उचित महत्त्वपूर्ण जानकारी की दृष्टि से इस दर्शन की आधुनिक शिक्षा में आवश्यकता एवं उपयोगिता को ध्यान में रखकर छात्रों के लिए सहज एवं सरल रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है। मीमांसा के विषय में सामान्य अवधारणा है कि किसी वस्तु के स्वरूप का यथार्थ निर्णय करने की विधि को मीमांसा कहते हैं परन्तु मीमांसा को कुछ अन्य वर्ग, धर्म, में विचार शास्त्र स्वीकारते है मीमांसा शास्त्र का मूल ग्रन्थ वेद है, वेद मंत्रमय है, वेद धर्म का ज्ञान कराते हैं धर्म समाज का धारक है समाज को अनुशासन में रखने का कार्य धर्म करता है इस प्रकार से वेद अनुशासन में रखने वाला अनुशासक है जैमिनि ने अपने मीमांसा दर्शन में उपरोक्त गूढ़ अर्थ को उद्घाटित किया है, कर्म और ज्ञान के भेद से मीमांसा के दो भेद हैं

1. पूर्व मीमांसा
2. उत्तर मीमांसा

1. पूर्व मीमांसा का ही प्रसिद्ध नाम मीमांसा दर्शन है यह वैदिक कर्मकाण्ड परक है। मीमांसा का कर्म काण्ड ही मनुष्य का परम धर्म है। मीमांसा को तंत्र न्याय इत्यादि नामों से भी जाना जाता है तन्त्र का अर्थसिद्धान्त अन्वेषण (खोज) है। न्याय का अर्थ वाद विवाद अथवा तर्क इस लिए इसे तर्क भी कहा जाता है।

## वेदान्त दर्शन

वेदान्त दर्शन भारतीय दर्शन का सर्वाधिक चमत्कृत भाग माना जाता है। समस्त आध्यात्मिक प्रश्नों का उत्तर वेदान्त दर्शन में उपलब्ध होता है। क्योंकि वेदान्त का मूल उपनिषेदों में निहित है (उपनिषद् से अभिप्रायः उप + निषद्) उप का अर्थ निकट अथवा समीप "नि"निश्चयात्मकता का घोतक है। अतः उपनिषद् का अर्थ वह विद्या जो अविद्या का नाश करती है और मोक्ष के समीप ले जाती है।

वैसे वेदान्त शब्द का यौगिक अर्थ है वेद का अन्त अथवा वे सिद्धान्त जो वेदों के अन्तिम अध्यायों में प्रतिपादित किये गये है और ये ही उपनिषद है।

**वेदान्त दर्शन का परिचय :-** वेदान्त दर्शन को हम दो भागों में विभाजित कर सकते है (1) शंकर पूर्व वेदान्त (2) शंकर पश्चात् वेदान्त भारतीय दर्शन में वेदान्त से सम्बन्धित अनेक विचार धाराओं का वर्णन मिलता है। बादरायण की विचारधारा को अधिक महत्व दिया जाता है। बादरायण महर्षि पाराशर के पुत्र थे। महर्षि बादरायण ने उपनिषदों में फैले हुए अध्यात्म विषयक विद्या विषयक आदर्शवादी विचारों का संग्रह ब्रह्मसूत्रों अथवा वेदान्त सूत्रों में प्रतिपादित किया है। ब्रह्म सूत्र में चार अध्याय हैं। जिसमें पहला अध्याय "समन्वयाध्याय" नाम से है इसमें ब्रह्मविद्या से सम्बन्धित वर्णन है। द्वितीय अध्याय को "अविरोधाध्याय" के नाम से प्रतिस्थापित किया गया है। इसमें सांख्य आदि शास्त्रों के विरोध का निराकरण किया गया है। तृतीय अध्याय का नाम "साधनाध्याय" है। इसमें ब्रह्मविद्या की सिद्धि के उपायों के बारें में चर्चा की गई है। चतुर्थ अध्याय ''फलाध्याय'' है। इसमें ब्रह्मविद्या के फल विवेचित किये गये हैं। ब्रह्मसूत्र को "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" से आरम्भ किया गया है। ब्रह्मसूत्र की रचना 500 वर्ष ईसा पूर्व मानी गई है।

**प्रश्न-9. योग के प्रकारों को समझाए।**

**Explain the types of Yoga.**

**उत्तर - योग के प्रकार -**

**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।**
**मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।**

**भावार्थ :** तुम्हें अपना कर्म (कर्तव्य) करने का अधिकार है, किन्तु कर्म के फलों के तुम अधिकारी नहीं हो। तुम न तो कभी अपने आपको अपने कर्मो के फलो का कारण मानो, न ही कर्म न करने में कभी आसक्त हो जाओं।

1. **कर्म योग :-** विद्वानों ने इस संसार को कर्मक्षेत्र कहा है, प्रत्येक प्राणी को यहाँ आकर कर्म करना होता है। कर्म अच्छे भी होते हैं और बुरे भी। गीता में कहा गया कार्य और अकार्य का निर्णय शास्त्र के प्रमाण से करना चाहिएँ। शास्त्र के विधान को जानकर उसके अनुसार कर्म करना ही कर्तव्य है। यही कर्म योग है। योग में योगियों की निष्ठा निष्काम कर्म योग से होती है। कर्म योग के अनेक नाम हैं, कोई मदर्थ कर्म कहता है तो कोई तदर्थ कर्म। जब इन योगों में साधन की पराकाष्ठा रूप निष्ठा उत्पन्न हो जाती है तभी योग की सिद्धि होती है।

इसलिए मानव को कर्म करते रहना चाहिए। कर्म का त्याग नहीं करना चाहिएँ। गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है- "कर्मों को त्यागने से न तो निष्कर्मता की प्राप्ति होती है और न ही भगवान साक्षात्कार रूप सिद्धि की प्राप्ति हो सकती है।" इसीलिए-हे कौन्तेय तुझे अपने सहज कर्म, चाहे वह दोष युक्त ही हो, त्यागना नहीं चाहिए। **"सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्"** (गीता)। जो भी कर्म किए जाएँ वे निष्काम होने चाहिए, उनमें फलों की भावना नहीं होनी चाहिए कृष्ण कहते हैं- "आसक्ति को छोड़कर, सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धि वाला होकर योगस्थ हुआ कर्मो को कर, यह समत्व भाग ही कर्म योग है।"

2. **हठ योग :-** हठ योग से तात्पर्य जैसा कि 'हठ' शब्द के अर्थ से ऊपरी तौर पर मालूम पड़ता है



ऐसे योग से नहीं है जिसे साधक के द्वारा हठ करके या अपने पर कोई बल प्रयोग करके किया जाता है। यहाँ हठ शब्द के 'ह' और 'ठ' अक्षर विभिन्न अर्थों के प्रतीकों के रूप में सामने आते हैं। इन अर्थों को नीचे तालिका में दिखाया गया है।

**प्रतीकात्मक अर्थ**

| 'ह' | 'ठ' |
|---|---|
| सूर्य ऊर्जा | चंद्र ऊर्जा |
| पिंडला नाड़ी | इड़ा नाड़ी |
| दायाँ नासारंध्र | बायाँ नासारंध्र |
| गरम प्रकृति | ठंडी प्रकृति |
| अपान वायु | प्राण वायु |
| श्वास | प्रश्वास |

आध्यात्मिक ब्रह्म में सूर्य और चंद्र की उपस्थिति है। इन तत्वों के प्रतिनिधि के रूप में मानव शरीर में पिंडला और इड़ा नाड़ियों का अस्तित्व माना जाता है। ये क्रमशः गरम और ठंडी नाड़ियाँ मानी जाती हैं। हठ योग-साधना इन दोनों नाड़ियों में आवश्यक संतुलन और सामंजस्य पैदा करने का प्रयत्न करती है तथा पिंगला और इड़ा नाड़ियों के बीच में स्थित सुषुम्ना नाड़ी को चैतन्यमय बनाकर आत्मगत सूक्ष्म शक्तियों के विकास में सहायक होती है। अंत में इस प्रकार के शक्ति जागरण से साधक आध्यात्मिकता के उच्च शिखर समाधि और मोक्ष को प्राप्त करता है।

इस तरह मुख्य रूप से हठ योग-साधना में षट्कर्म, आसन, प्राणायाम, बंध, मुद्रा आदि साधनों का प्रयोग शरीर को साधने के लिए किया जाता है। योगी का शरीर अब इस काबिल बन जाता है कि वह अपनी इंद्रिया पर पर्याप्त नियंत्रण कर सके। इस प्रकार से हठ योगी प्रत्याहार और ध्यान प्रक्रिया की सहायता लेता है और कुंडलिनी जागृत कर उसे आगे समाधि अवस्था तक ले जाता है। इन विभिन्न योग क्रियाओं का अभ्यास करके ही हठ योगी अपने लक्ष्य की प्राप्ति करता है।

3. **मंत्र योग :-** मंत्र योग में, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट होता है, मंत्रों का शुद्ध उच्चारण करके या अपने इष्टदेव का नाम बार-बार दोहरा कर सिद्धि प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। मंत्रों का जाप करने से भक्त को आत्मिक शांति एवं शक्ति का अनुभव होता है। भारतीय धर्म में ओउम् का जाप अर्थात् ओउम् मंत्र को विशेष महत्त्व दिया गया है जिसके ठीक उच्चारण से हम अपने जीवन की इच्छित मंजिल तक पहुँचने के लिए अग्रसर हो जाते हैं।

मंत्र से तात्पर्य एक विशेष प्रकार की ध्वनि से है जिसके उच्चारण से वायुमंडल में एक कंपन पैदा होती है। इस कंपन का अपना चमत्कारिक प्रभाव होता है, जिससे एक विशेष प्रकार की शक्ति का प्रस्फुटन होता है। मंत्रों के उच्चारण से हमारे शरीर में स्थित विभिन्न प्रकार के नाड़ी केंद्र अथवा नाड़ी चक्र प्रभावित होते हैं जिनसे मनुष्य, विशेष पुरूष की संज्ञा से विभूषित होता है अर्थात वह आत्मज्ञान प्राप्त कर भगवान में लीन हो जाता है।

'ऊ' शब्द सबसे शक्तिशाली बीज मंत्र माना गया है इसमें तीन ध्वनियों का मेल है - अ + ऊ + म्।

'अ' शब्द सृष्टि के निर्माता ब्रह्म का प्रतीक है।

'ऊ' जगत के पालनकर्ता विष्णु या प्रतीक है तथा

'म्' संसार के संहारक शिव का प्रतीक है।

इस प्रकार सृष्टि की रचना, पालन तथा संहार तीनों प्रमुख क्रियाएँ इस 'ओउम' मंत्र में निहित है। किसी भी मंत्र को जाप तभी प्रभावशाली होता है जब साधक आत्मिक भावों के साथ पूर्ण आस्था से उसका शुद्ध उच्चारण करे। जाप तीन प्रकार से किया जाता है-

क. **वाचिक जाप** :- जब मंत्र का उच्चारण इस प्रकार बोल-बोलकर किया जाए कि अन्य व्यक्तियों को भी इसकी ध्वनि सुनाई दे तो इसे वाचिक जाप कहते हैं।

ख. **मानसिक जाप** :- जब साधक इस प्रकार मन-ही-मन जाप करता है कि उसकी ध्वनि नहीं होती है उसे मानसिक जाप कहते हैं। आचार्य मनु के अनुसार मौन जाप से मंत्र की शक्ति बहुत बढ़ जाती है।

ग. **उपांशु जाप** :- यह जाप की परम् स्थिति होती है। इसमें साधक इष्ट देव में इतना लीन हो जाता है कि उसके अंतर्मन को सब तरफ से उसी मंत्र की ध्वनि सुनाई देती है। परन्तु यह ध्वनि दूसरो को सुनाई नही देती जिसका वह जाप कर रहा है, इसे उपांशु जाप कहते हैं।

**इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि बाह्य भौतिक जगत के आकर्षण से बचने के लिए और परमात्मा तत्व को प्राप्त करने के लिए मानव इष्ट देव के जिस दिव्य नाम रूप का आश्रय लेकर, चित्तवृत्ति का निरोध करने का प्रयास करता है पर सब मंत्र योग में बताया गया सिद्धि मार्ग ही है।**

4. **सांख्य योग** :- सांख्य योग के प्रवर्तक कपिल मुनि हैं उनके अनुसार यह संसार 25 तत्वों से मिलकर बना है जो कि पुरूष और प्रकृति दो वर्गों में विभाजित किए गए हैं।

**सांख्य दर्शन के दो प्रमुख सिद्धान्त हैं** - सत्कार्यवाद एवं पुरूष बहुत्व, जिनका विस्तार से विवेचन आगे किया जाएगा। यहाँ केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि सांख्यदर्शन वस्तुतः ज्ञानप्रधान दर्शन है, जो तात्विकज्ञान के अनन्तर मोक्ष या कैवल्य की प्राप्ति स्वीकार करता है। यह केवल तीन प्रमाणों प्रत्यक्ष, अनुमान और आप्त को स्वीकार करता है।

**पुरूष**- पुरूष अथवा आत्मा जो एक है, जिसका न आदि है न अंत, जो न किसी तत्त्व से निर्मित होता है और न उससे कोई तत्त्व बनता है, जो चैतन्य रूप है, सूक्ष्म है, सर्वव्यापी है, निर्गुण है, अपरिवर्तनशील है, प्रकृति का ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष को प्राप्त करता है और जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा प्राप्त कर लेता है।

**प्रकृति**- कपिल मुनि के अनुसार प्रकृति के 24 तत्व हैं जो निम्न प्रकार हैं-

**पाँच ज्ञानेंद्रियाँ**- आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा।

**पाँच कर्मेंद्रियाँ**- मुँह, हाथ, पैर, उपस्थ और गुदा।

**पाँच तन्मात्राएँ**- रूप, शब्द, गंध, रस और स्पर्श।

**पाँच स्थूलभूत**- आकाश, वायु, जल, पृथ्वी और अग्नि।

**मन, बुद्धि, अंहकार और मूल प्रकृति**- प्रकृति इन 24 तत्त्वों के साथ मिलकर, अपने तीनों गुणों-सत्व,





रज और तमस की न्यूनाधिकता के कारण विश्व के विभिन्न पदार्थों की उत्पत्ति का कारण बनती है। आधार इन्हें ही माना गया है, अतः सांख्य योग को द्वैतवादी भी माना जाता है।

सांख्य योग में प्रकृति और पुरूष दो तत्त्वों का ही विश्लेषण किया गया है, सृष्टि का

5. **राज योग** :- राज योग, योग की अन्य पूर्व वर्णित विधाओं अथवा पद्धतियों की भाँति ही आत्मा-परमात्मा के ऐक्य अर्थात् मोक्ष प्राप्ति को अपना परम उद्देश्य मानता है। हठ योग में जहां शरीर पक्ष को अधिक महत्त्व दिया जाता है लय योग में प्राण अथवा कुंडलिनी शक्ति के जागरण और भक्ति योग में भाव और हृदय पक्ष को, सांख्य योग और ज्ञान योग में ज्ञान और बुद्धि पक्ष को तथा कर्म योग में इंद्रियों द्वारा निष्काम कर्म करते रहने को मोक्ष का साधन माना जाता है वहां राज योग में इस प्रकार का कोई एकांगी निर्णय नहीं लिया जाता। राज योग एक प्रकार से ऐसी योग पद्धति का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें सभी अन्य मुख्य पद्धतियों अथवा विधाओं की आवश्यक अच्छी बातों अंगीकार कर ली गई हैं। यह एक समन्वयवादी दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है। राज योग व्यक्तित्व के सभी पक्षों- शारीरिक, मानसिक, भावात्मक और आध्यात्मिक के सर्वांगीण विकास और उन्नति को साथ लेकर चलने में विश्वास करता है। इसीलिए इसे हठ योग, लय योग, मंत्र योग, ज्ञान योग, कर्म योग, भक्ति योग आदि सभी प्रकार के योगों का राजा कहा जाता है। इसका स्तर इन सब प्रकार के योगों से ऊँचा है। राज योगी की मानसिक और आत्मिक अवस्था अन्य योगियों की अपेक्षा कुछ अधिक ऊँचे स्तर की होती है, क्योंकि राज योग योग की पहली पीढ़ी न होकर अपेक्षाकृत कुछ अधिक ऊँची है।

6. **भक्ति योग** :- हिन्दू धर्म में ईश्वर प्राप्ति के तीन मार्ग बनाए गए हैं - ज्ञान, कर्म, भक्ति। भक्ति ईश्वर प्राप्ति का सबसे सरल व सुगम मार्ग है। परमात्मा के महात्म्य को जानकर उसके प्रति प्रेम भाव रखना व सर्वस्व ईश्वर को समर्पित कर देना ही भक्ति है। इस भक्ति से ही ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है। ज्ञानी व्यक्ति तो परमात्मा की प्राप्ति के लिए परमात्मा तत्व के ज्ञान को जानना आवश्यक मानते हैं। परन्तु ज्ञान प्राप्ति का मार्ग अत्यंत कठिन व कष्टपूर्ण है। यह सामान्य व्यक्ति की प्राप्ति से परे है। क्योंकि कई बार विभिन्न कर्मकांड करते हुए भी व्यक्ति कई बार भ्रमवश पथभ्रष्ट हो जाता है। क्यों कि विधिवत रूप से कर्मकांड करना साधारण व्यक्ति की पहुंच से परे है। अतः भक्ति मार्ग ही एक एक ऐसा मार्ग है जिस पर चलता हुआ सामान्य-से-सामान्य जन भी ईश्वर को प्राप्त कर सकता है। भक्ति योग में साधक सगुण या साकार रूप की उपासना करता है। क्यों कि साधारण व्यक्ति के लिए ऐसी किसी चीज पर विश्वास करना जो दिखाई न दे, कठिन है। इसीलिए भक्ति योग में भी इष्ट देवता की मूर्ति, चित्र आदि को सम्मुख रखकर, उसके प्रति प्रेम भाव जागृत होने पर ही भक्त अपना सर्वस्व उस पर निछावर कर, अपने भाव को भूलकर, उसकी भक्ति मे तन्मय हो जाता है। यही भक्ति योग है।

इस सगुणोपासना को भक्ति के पाँच प्रकारों में बांटा गया है। जिसके आधार पर भक्त पाँच प्रकार के होते हैं।

1. ऐसे भक्त जो कष्ट या दुख में भगवान को याद करते हैं और दुख समाप्त होने जाने पर भगवान को भूल जाते हैं।
2. ऐसे भक्त जो किसी पूजा स्थल, मंदिर आदि या सतसंग आदि के पास पहुंचने पर स्वभावतः भगवान

में आस्था रखने के कारण उस समय ईश्वर में लीन हो जो हैं और उसके बाद अपने कार्यो में लीन हो जाते हैं।

3. तीसरी श्रेणी में वे भक्त आते हैं जो ईश्वरीय स्थलों आदि से दूर रहने पर भी, विभिन्न दैनिक कर्म संपन्न करते हुए ईश्वर का ध्यान करते रहते हैं।
4. ऐसे भक्त जो दैनिक कर्मो आदि का त्यागकर हर समय भगवान की भक्ति में लीन रहते हैं। जैसे तपस्वी, साधु-महात्मा आदि
5. पांचवी श्रेणी में महान भक्त आते हैं जो अपना आस्तित्व मिटाकर अपने आपको ईश्वर में उसी प्रकार एकाकार कर देते हैं जैसे नदी सागर में मिलकर अपने अस्तित्व को समाप्त कर देती है।

इस प्रकार भक्ति योग द्वारा प्रतिपादित योग मार्ग, परम पिता ईश्वर का अनेक रूपों व स्वरूपों में ध्यान एवं मनन करते हुए, ईश्वर को प्राप्त करने का सरलतम मार्ग है।

**प्रश्न-10. यौगिक आहार से क्या तात्पर्य है? क्या यह आधुनिक संदर्भ में व्यावहारिक है?**
**What is Yogic diet? Is yogic diet practiced keeping in mind modern trends.**

**उत्तर** - मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिए उचित आहार एवं भोजन की आवश्यकता होती है। प्राणायाम, षट्कर्म आदि योग क्रियाओं द्वारा शारीरिक कार्यप्रणाली को ठीक प्रकार से बनाए रखने और शरीर की रोगनाशक शक्ति को बढ़ाने में मदद मिलती है। योगासन और योगाभ्यास सम्बन्धी अन्य क्रियाएँ शरीर को पूरी तरह स्वस्थ रखने और मन को विकार रहित होने में सहायता करती हैं। शरीर रूपी मशीन को सुचारू रूप से चलाने के लिए, जहाँ इस प्रकार की शुद्धि व्यायाम और योग क्रियाओं द्वारा प्राप्त होते हैं, वहाँ इस मशीन को आवश्यक ऊर्जा प्राप्त कराने में उचित आहार का भी विशेष महत्व है। हमारा भोजन जितना अधिक शुद्ध, पौष्टिक एवं संतुलित होगा, उतनी ही अच्छी व उचित ऊर्जा खुराक के रूप में शरीर व मन को प्राप्त हो सकेगी। पाश्चात्य दार्शनिक अरस्तू ने भी कहा है कि स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का निवास होता है।

**आहार का अर्थ** :- वे खाद्य पदार्थ, जिनके सेवन से शरीर में शक्ति, ऊर्जा, अवयवों की क्षति पूर्ति एवं शारीरिक विकास होता है उन्हे भोजन या आहार कहते हैं।

भोजन केवल मनुष्य को जीवनदायनी शक्ति ही प्रदान नहीं करता बल्कि यह मनुष्य की आयु, चरित्र तथा आचरण को भी प्रभावित करता हैं।

प्राचीन महान ऋषियों ने कहा भी है - **"जैसा खाओगे अन्न, वैसा होगा मन।"** अर्थात् मनुष्य जैसा भोजन करेगा उसका मन, व्यवहार, चित्त तथा आदतें भी वैसी ही होगी।"

महर्षि पतंजलि ने भी भोजन के बारे में लिखा है - **"मित् भुक्, हित् भुक्, ऋत् भुक्।"** अर्थात् कम खायें अभिप्राय भूख से कम खायें, शरीर के लिए जो हितकारी है वह खायें और ऋत् अर्थात् पका हुआ खाये। दूसरा अर्थ ऋतु के अनुसार खायें।

**त्रिगुण** :- योगशास्त्र प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में तीन गुणों की प्रधानता मानता है। ये तीन गुण सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण योगशास्त्र में त्रिगुण कहलाते है। भोजन में भी ये तीनों गुण पाए जाते है। जिनका वर्णन इस प्रकार है :-

1. **सात्विक आहार/भोजन** - सात्विक भोजन वह आहार है जिसके सेवन से हमारा जीवन सुखमय व आनन्दित होता है। शरीर निरोग व शक्तिशाली बनता है। इसमें मिर्च, मसाले, नमक तथा खट्टे





पदार्थों की कमी होती है। यह भोजन आसानी से पचने वाला भी होता है। यह भोजन न ज्यादा गरम न अधिक ठण्डा होता है। इस प्रकार के भोजन में ताजे फल, हरी सब्जियाँ, छिलका युक्त दालें, दूध, दही, अंकुरित अन्न आदि का सेवन किया जाता है। ताजा होने के कारण यह भोजन शरीर के लिए अधिक लाभप्रद होता है। इसे सर्वश्रेष्ठ एवं आदर्श भोजन माना गया है। इसे योगी आहार भी कहा जाता है।

2. **राजसिक आहार/भोजन** - इस भोजन के सेवन से मनुष्य की इन्द्रियाँ बहुत ही उत्तेजना का अनुभव करती हैं, अतः इस प्रकार के भोजन के सेवन से इन्द्रियों पर उचित नियंत्रण रखने में असुविधा होती है। कार्य, विचार एवं भावों से इस प्रकार का भोजन व्यक्ति में राजसी प्रवृत्ति उत्पन्न कर उसे भोग विलास की ओर उन्मुख करता है। इस प्रकार के भोजन में मिर्च, मसाले, खट्टे पदार्थ अधिक मात्रा में होते हैं। यह ज्यादा गरम, ज्यादा या शुष्क भी होता है, जिसके सेवन से पेट में जलन उत्पन्न होती है। ऐसे भोजन को पचने में भी अधिक समय लगता है। इस प्रकार के भोजन में मेवे, मिठाईयाँ, ठण्डे द्रव्य, मादक पदार्थ, तम्बाकू, चाय, काफी, तले-भुने पदार्थ आदि सम्मिलित हैं। ये व्यक्ति को आलसी तथा उतेजना युक्त बना देते हैं। जिससे व्यक्ति अपनी इन्द्रियों पर काबू न पा सकने के कारण कई बार गलत राह पर चल पड़ता है। इस प्रकार के भोजन से व्यक्ति को रोगों से लड़ने की क्षमता भी कम हो जाती है तथा व्यक्ति विलासप्रिय बनने लगता है। इस प्रकार के भोजन के सम्बन्ध में कहा भी गया है कि इस भोजन का सेवन करने वाला व्यक्ति जीने के लिए नहीं खाता, बल्कि खाने के लिए जीता है।

3. **तामसिक भोजन** - यह भोजन सभी प्रकार के गुणों से विहीन होने के कारण निकृष्ट श्रेणी में गिना जाता है। स्वास्थ्य के लिए इस प्रकार के भोजन का प्रयोग उचित नही है। ऐसा भोजन करने से व्यक्ति में तामसी प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होती है। और वह आलसी, चिड़चिड़ा, निकम्मा और दुष्ट प्रवृत्ति वाला बन जाता है। सभी तरह का बासी खाना, कच्चे-सड़े गले फल एवं खाद्य पदार्थ, दुर्गन्धयुक्त भोजन, पौष्टिक तत्वों से रहित पदार्थ, कीटाणु युक्त भोजन तामसी भोजन के अंतर्गत आते हैं। ऐसा भोजन करने वाले व्यक्ति का मन और आत्मा तो दूषित हो ही जाती है साथ ही वह विभिन्न रोगों से भी ग्रस्त होकर शक्तिहीन हो जाता है और समाज के लिए अभिशाप बन जाता है।

**संतुलित भोजन/आहार (Balanced diet )** - "संतुलित भोजन वह भोजन है जिसमें सभी आवश्यक पोषक तत्वों, व्यक्ति के शरीर की आवश्यकता के अनुसार उचित मात्रा में पाए जाते है। ऐसा भोजन शक्ति प्रदान करने वाला तथा सुपाच्य होता है।"

**संतुलित भोजन के आवश्यक तत्त्व -**

**संतुलित भोजन -**

संतुलित भोजन वह भोजन है जिसमें व्यक्ति विशेष के शरीर की आवश्ययकतानुसार सभी पौष्टिक तत्व उचित मात्रा में पाए जाते हैं। यह सुपाच्य और शक्तिवर्धक होता है।

**तत्व -**

किसी भी खाद्य पदार्थ में आवश्यक तत्व एक समान रूप में नहीं पाए जाते हैं। किसी पदार्थ में यह कम तथा दूसरे खाद्य पदार्थ में अधिक पाए जाते हैं।

1. **प्रोटीन** - यह तत्व शरीर को रचना और निर्माण में सहायक है। यह फास्फोरस, गंधक, आक्सीजन

कार्बन के मेल से बना हुआ तत्व है। प्रोटीन 2 प्रकार की होती है। वनस्पति प्रोटीन व पशु प्रोटीन।

**2. कार्बोहाइड्रेटस** - कार्बोज शरीर में कार्य करने के लिए शक्ति प्रदान करती है। यह 2 प्रकार के होते है।

(1) **श्वेतसार कार्बोज** - गेहूँ, चावल, जौ, आलू में अधिक होता है।

(2) **शर्करा कार्बोज** - गन्ने का रस, शक्कर, गुड, सूखे मेवे आदि में पाए जाते हैं।

**वसा** - यह चर्बी के रूप में भोजन का संग्रह कर लेती है। इसकी कमी से व्यक्ति दुबला-पतला हो जाता है और अधिकता से मोटा हो जाता है। वसा दो प्रकार की होती है।

**1. वनस्पति वसा** - बादाम, अखरोट, सूखे फल आदि में अधिक पाई जाती है।

**2. पशु वसा** - दूध, घी, अड़े, मक्खन आदि में अधिक मात्रा में पाई जाती है।

**जल** - सब खाद्य पदार्थों में पानी की कुछ न कुछ मात्रा अवश्य होती है। जल शरीर के अंदर से विजातीय व विषैले पदार्थों को निकालने में सहायता करता है और शरीर का तापमान नियमित रखता है। जल की उचित मात्रा न होने से हमारी पाचन क्रिया में बाधा पहुंचाती है।

**विटामिन खाद्योज** - विटामिन भी हमारे शरीर के विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है। विटामिन कई प्रकार के होते हैं। जैसे -

**विटामिन 'ए'** - विटामिन 'ए' से शरीर सुदृढ़, स्वस्थ और निरोग बनता है, आँख, गले व सांस के रोगों से यह विटामिन बचाव करता है। विटामिन दूध, दही, पनीर, घी, खमीर, चावल, बादाम, हरी मिर्च, केले, टमाटर आदि में पाया जाता है।

**विटामिन 'ब'** - विटामिन 'बी' कई प्रकार का माना गया है जैसे विटामिन बी1, बी2, बी3, बी7, बी12 आदि। विटामिन बी की कमी से शरीर में दर्द होना, चक्कर आना, चिंता आदि विकार उत्पन्न हो जाते हैं। विटामिन बी छिलके वाली दाल, अनाज, खमीर, चावल, बादाम, नारियल, मूगंफली फल, टमाटर, सेब, गाजर आदि में पाया जाता है।

**विटामिन 'सी'** - यह विटामिन बच्चे के शरीर की वृद्धि, दाँतों व मसूढ़ों का निर्माण व विकास आदि में सहायक होता है। इस विटामिन के मुख्य स्रोत नींबू, नारंगी, टमाटर, संतरा, आँवलें आदि हैं।

**विटामिन 'ई'** - इस विटामिन की आवश्यकता गर्भवती स्त्रियों को होती है। यह विटामिन प्रजनन क्रिया में सहायक होता है। विटामिन 'ई', हरी सब्जियाँ, गेहूँ, दूध, अंडा व घी में पाया जाता है।

**विटामिन 'डी'** - वैसे वो सभी के पूर्ण स्वास्थ्य के लिए विटामिन 'डी' की आवश्यकता होती है परन्तु बच्चों व गर्भवती स्त्रियों के लिए यह विशेष रूप से आवश्यक है। दूध, घी, मक्खन आदि में ये विटामिन पाया जाता है। त्वचा पर सूर्य की किरणें पड़ने से भी इस विटामिन की प्राप्ति होती है।

**विटामिन 'के'** - यह विटामिन चोट लगने पर रक्तस्त्राव को रोकने में सहायक है। इसकी सहायता से रक्त बाहर आने पर जम जाता है। अतः बहाव रूक जाता है। विटामिन 'के' हरी सब्जी, बंदगोभी, टमाटर आदि में पाया जाता है।

दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि भोजन के अन्दर तत्वों का सन्तुलन बना रहना ही संतुलित भोजन है। भोजन के सभी तत्व उचित मात्रा में होने चाहिए, क्योंकि मात्रा में कमी या अधिकता होने पर शारीरिक विकास एवं स्वास्थ्य में बाधा पहुँचती है। संतुलित भोजन में प्रोटीन, विटामिन, कार्बोज, वसा, खनिज पदार्थ, जल एवं रेशे आदि तत्व उचित मात्रा में पाए जाते हैं। ऐसा भोजन ही आदर्श भोजन माना जाता है।

**यौगिक आहार** :- योग साधना में रत एक योगी विभिन्न यौगिक क्रियाओं को सम्पन्न करता है ताकि



वह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सके। इसके लिए उसे केवल अपनी यौगिक क्रियाओं पर ही ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है बल्कि उसे अपने भोजन सम्बन्धी आदतों पर भी ध्यान देना पड़ता है क्योंकि उसे अपनी यौगिक क्रियाओं को सम्पन्न करने की क्षमता भोजन से ही प्राप्त होती है। योगी द्वारा लिए जाने वाले आहार में निम्नलिखित गुण होना आवश्यक है, ताकि वह यौगिक आहार कहला सके। ये गुण निम्न हैं :-

1. आहार ऐसा होना चाहिए जो उसकी प्रकृति, आयु, लिंग, शारीरिक अंगो की आवश्यकता तथा दिनचर्या के अनुकूल हो।
2. कम भोजन से ही आवश्यक ऊर्जा एवं शक्ति मिल जाए इस बात का ध्यान रखना चाहिए।
3. सन्तुलित आहार तथा कैलोरी की उचित मात्रा दोनों ही बातों को ध्यान में रखकर योगी को ही प्रकार से अपनी प्रकृति और आवश्यकताओं के अनुकूल ऐसे भोजन का चुनाव करना चाहिए जो अधिक-से-अधिक सुपाच्य, सादा, कम खर्चीला एवं सात्विक हो।
4. सात्विक भोजन का सात्विक गुणों से और विकार रहित शरीर एवं मन से बहुत गहरा सम्बन्ध है। जलवायु तथा परिस्थितियों की मजबूरी को छोड़कर जहाँ तक हो सके एक योगी को प्रत्येक अवस्था में सात्विक भोजन ग्रहण करना चाहिए। राजसी एवं तामसी पदार्थों से एक योगी जितना दूर रह सके उतना ही अच्छा है क्योंकि सात्विक भोजन से मन, वचन और कर्म की पवित्रता तो जाती ही है साथ में योगी को अपनी इन्द्रियों, इन्द्रियों के स्वामी मन तथा आत्मा को संयमित एवं सबल बनाने में भी सहायता मिलती है।
5. यौगिक क्रियाओं तथा आसन करने के लिए जिस प्रकार का भोजन हानिकारक या बाधक हो, उसे अपने आहार में शामिल नहीं करना चाहिए। उदाहरण के लिए ऐसा भोजन जिससे नींद आए या अनावश्यक उत्तेजना बढ़े, उससे योगी को परहेज करना चाहिए।

**यौगिक आहार तथा संतुलित भोजन में अन्तर** :- प्रायः यौगिक आहार तथा संतुलित भोजन को एक अर्थ में लिया जाता है। परन्तु ये दोनों अलग-अलग है। इन दोनों के मध्य अन्तर को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है :-

| यौगिक आहार | संतुलित आहार |
|---|---|
| 1. यौगिक आहार शुद्ध सात्विक भोजन होता है जिससे फलाहार, शाक-सब्जियाँ दूध, दही तथा अन्न का सेवन किया जाता है। | संतुलित आहर में इन सभी के अतिरिक्त-माँसें, मछली तथा अण्डे का भी प्रयोग किया जाता है। |
| 2. यौगिक आहार में तले व खट्टे खाद्य पदार्थों का परहेज किया जाता है। | परन्तु संतुलित भोजन में खट्टे पदार्थों से विटामिन 'C' की प्राप्ति के कारण प्रयोग की सलाह दी जाती है। |
| 3. यौगिक आहार में योगी को दिन में दो बार हल्का भोजन करने का सुझाव दिया जाता है। | संतुलित आहार में दिन में तीन बार भोजन की सलाह दी जाती है। |

| | |
|---|---|
| 4. यौगिक आहार में विभिन्न प्रकार के मसालों का प्रयोग करने से परहेज किया जाता है। | जबकि सन्तुलित भोजन में सभी पदार्थ सन्तुलित मात्रा में प्रयोग किए जाते हैं। |
| 5. यौगिक आहार में संतुलित आहार सम्मिलित नही है। | परन्तु संतुलित भोजन में यौगिक आहार भी सम्मिलित है। |
| 6. यौगिक आहार शुद्ध सात्विक आहार होता है। | किन्तु संतुलित आहार सात्विक होने के साथ-साथ राजसी भी होता है। |

इस प्रकार यौगिक तथा संतुलित आहार में बहुत महत्वपूर्ण अन्तर है।

**प्रश्न-11. चित्त को कैसे नियंत्रित किया जा सकता है? पतंजलि द्वारा प्रदत योग की परिभाषा को ध्यान में रखते हुए व्याख्या करें।**

**How can chitta be controlled? Explain Yoga keeping in mind Patanjali's definition of Yoga.**

**अथवा**

**चित्त से आप क्या समझते है? चित्त नियंत्रण की विभिन्न विधियों का वर्णन कीजिए।**

**What do you understand by Chitta? Explain various methods of Chitta Control.**

**उत्तर - भूमिका :-** मनुष्य सोचने, समझने, अनुभव करने तथा कर्मेंद्रियों द्वारा जो भी व्यवहार या कार्य करता है, वास्तव में यह सब वह अपने मन के अनुसार करता है। यदि मनुष्य का मन (चित्त) शांत हैं तो वह उचित व्यवहार करता है। यदि मनुष्य का मन (चित्त) शांत नहीं है तो वह अपने व्यवहार पर, मन की इच्छाओं पर नियंत्रण नहीं रख पाता। मनुष्य अपने मन (चित्त) के अनुसार बुरे व अच्छे कार्यों से जुड़ जाता है योग चित्त को नियंत्रित करता है।

**चित्त का अर्थ :-** मन, बुद्धि और अंहकार के योग को चित्त कहते हैं।

**मन -** जो मनन् का कार्य करता है, सोचता है उसे मन कहते हैं।

**बुद्धि -** जो चितंन के आधार पर सही-गलत का निर्णय करती है।

**अंहकार -** 'मैं' की भावना का होना।

चित्त मोह, धन, लोभ, काम, क्रोध आदि में पड़कर बदलता रहता है। चित्त स्थिर नहीं रहता। जब हम किसी के अच्छे व बड़े घर को देखते है तो हमारे मन में इच्छा होती है कि हमारे पास भी ऐसा घर हो। यदि थोड़ी देर बाद किसी मृत व्यक्ति या किसी मृत्यु को देखते हैं तो मन में विचार आता है कि सब व्यर्थ है, इस प्रकार मनुष्य का चित्त परिवर्तित होता रहता है।

**पतंजलि द्वारा योग की परिभाषा :- "योगश्चित्तवृत्तिः निरोधः"**

चित्त की वृतियों पर नियंत्रण ही योग है।





चित्त - मन, बुद्धि और अंहकार के योग को चित्त कहते हैं।

वृत्ति - 'वृंतु-वर्तने' धातु से वृत्ति शब्द बना है। इसका अर्थ है। 'बरताव करना'। जब मन (चित्त) सांसारिक विषय-वासनाओं (लोभ, मोह, काम, क्रोध, धन) की ओर आकर्षित होता है तो मन उनकी प्राप्ति चाहता है अर्थात् मन में चंचलता होती है, उसे ही वृत्ति कहते हैं। इस वृत्ति पर नियंत्रण ही योग है।

इन वृतियों को समाप्त नहीं किया जा सकता। योग द्वारा केवल इन्हें नियंत्रित किया जा सकता है।

चित्त की पाँच वृत्तियाँ होती हैं।

वृत्तियाँ -

1. प्रमाण
2. विपर्यय
3. विकल्प
4. निद्रा
5. स्मृति

1. **प्रमाण :-** ज्ञान को ही प्रमाण कहते हैं। ज्ञान रूपी साधन को साधक के सम्मुख लाना प्रमाण है। प्रमाण तीन प्रकार के होते हैं। 1. प्रत्यक्ष 2. आगम 3. अनुमान।

   स्वयं देखना प्रत्यक्ष, कल्पना या विचारों द्वारा देखना अनुमान, ऋषि मुनियों, वेदों द्वारा कही गई बातें आगम होती है।

2. **विपर्यय :-** विपर्यय का अर्थ है उल्टा ज्ञान। इसमें किसी वस्तु को देखकर झूठा (उल्टा ज्ञान) प्राप्त होता है। जैसे रस्सी को देखकर साँप जैसा प्रतीत होना।

3. **विकल्प :-** जिस ज्ञान के आधार पर ऐसी वस्तु की कल्पना की जाती है, जो वास्तव में नहीं है। विकल्प कहते हैं। जैसे- गधे के सिर पर सींग।

4. **निद्रा :-** शरीर की वह अवस्था जिसमें चेतना शून्य हो जाती है। जैसे नींद में स्वप्न में हँसना, रोना या डरना।

5. **स्मृति :-** मन में जो पूर्व अनुभवों के संस्कार शेष रह जाते हैं उनकी पुनरावृत्ति ही स्मृति है। पूर्व जीवन के सुख-दुःख, जय-पराजय, राग-द्वेष आदि स्मृति के कारण ही मानव मस्तिष्क में छाए रहते हैं, यही दुखः का कारण है।

**चित्त की अवस्थाओं का ज्ञान :-** चित्त पर नियंत्रण करने के लिए चित्त की अवस्थाओं को जानना आवश्यक है। पतंजलि ने चित्त की अवस्थाओं को पाँच भागों में बाँटा है।

1. **मूढ़ावस्था :-** इस अवस्था में व्यक्ति के अन्दर तमोगुण की प्रधानता होती है। मूढ़ावस्था वाला व्यक्ति समाज में सबसे निम्नस्तर का दिखाई देता है। तमोगुणी वृत्ति व्यक्ति के अंदर काम, क्रोध, लोभ, हिंसा आदि होती है।

2. **क्षिप्तावस्था :-** इस अवस्था में व्यक्ति का मन चंचल या अस्थिर रहता है। इस अवस्था वाले व्यक्ति समाज में आम व्यक्ति के रूप में दिखाई देते हैं।

3. **विक्षिप्तावस्था :-** इस अवस्था में व्यक्ति के अन्दर सत् एव रजगुण वृत्ति प्रक्रिया होती है। जिसके कारण व्यक्ति का मन कभी रजगुण की ओर कभी सतगुण की ओर आकर्षित होता है।

4. **एकाग्रावस्था :-** इस अवस्था में केवल सतगुण क्रियाशील रहता है। इसमें आध्यात्मिक जगत की

तरफ आकर्षित रहते हैं।

5. **निरूद्धावस्था** :- इस अवस्था में व्यक्ति का मन तीनों गुणों से रहित होता है। इसमें किसी भी चीज के प्रति आकर्षण नहीं रहता।

## चित्त नियंत्रण करने की विधियाँ

1. **यम** :- यम अष्टांग योग का प्रथम भाग है। यम द्वारा साधक बाह्यमुखता से अंतर्मुखता की ओर बढ़ता है। यम करने से साधक के मन में राग, द्वेष, अंहकार, लोभ, मोह आदि नहीं रहते तथा जीवन पवित्र व सात्विक बनता है।
2. **नियम** :- समाज द्वारा स्वीकृत (स्वीकार किए गए) नियमों के अनुसार आचरण करना ही नियम है। इन नियमों का पालन करने वाला व्यक्ति समाज में एक आदर्श पुरूष के रूप में जाना जाता है।
3. **आसन** :- शरीर की वह स्थिति जिसमें साधक बिना कष्ट के सुखपूर्वक शारीरिक और मानसिक रूप से स्थिर एवं संतुलित रहकर योग साधना में लीन रहता है, आसन कहलाती है। इसके द्वारा मन और इन्द्रियों को नियंत्रित किया जा सकता है।
4. **प्राणायाम** :- प्राणायाम संस्कृत के दो शब्द **प्राण+आयाम** से मिलकर बना है। प्राण का अर्थ है- श्वास। आयाम का अर्थ है नियंत्रण अथवा विकास। अतः इसका अर्थ है श्वास पर नियंत्रण रखकर जीवन शक्ति को विकसित करना।
5. **प्रत्याहार** :- यह शब्द दो शब्दों के योग से बना है- **प्रति+आहार** प्रति का अर्थ है विपरीत और आहार का अर्थ है भोजन अर्थात् प्रत्याहार का अर्थ है इच्छा रूपी भोजन पर नियंत्रण करना। इंन्द्रियों को विषयों की ओर अग्रसर होने से रोकना ही 'प्रत्याहार' है। हमारी पाँचों ज्ञानेंन्द्रियों आँख, कान, नाक, जिह्वा व त्वचा। रूप, शब्द, गंध, रस व स्पर्श आदि विषयों की ओर आकर्षित होती है, इन विषयों की ओर आकर्षित होने से रोकना प्रत्याहार है।
6. **धारणा** :- धारणा शब्द का अर्थ है धारण करना अर्थात् चित्त की वृत्तियों को संभालना। बार-बार प्रयास के द्वारा चित्त को एक विषय पर एकाग्र करना धारण कहलाता है। धारण में चित्त अपनी तीन अवस्थाओं (मूढ़ावस्था, क्षिप्तावस्था तथा विक्षिप्ता अवस्था) में होता है जो कि रजोगुण से प्रभावित होता है। इसी कारण ही चित्त (मन) एकाग्र नहीं रह पाता।
7. **ध्यान** :- ध्यान शब्द की उत्पत्ति **'धै' धातु** में ल्युट् प्रत्यय लगाने से हुई है जिसका अर्थ है चिंतन या मनन करना। महर्षि पतंजलि के अनुसार धारणा करते समय चित्तवृत्तियों का स्थिर बना रहना ही ध्यान है। ध्यान चित्त की स्थिरता की माध्यम अवस्था है, जिसमें चित्त एकाग्र हो जाता है। इसमें रजोगुण व तमोगुण का प्रभाव समाप्त जो जाता है और सतोगुण की प्रधानता हो जाती है।

**प्रश्न-12. समाधि के प्रकारो की व्याख्या कीजिए। अथवा समप्रज्ञात और असमप्रज्ञात समाधि की व्याख्या करें।**

**Discuss the types of Samadhi. Or Discuss Sampragyat and Assampragyat Samadhi.**

**उत्तर** - योग सूत्रों के अनुसार समाधि वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति अपनी सब चित्तवृतियों का



निरोध कर अपने मन को वश में करके अपनी समस्त शक्तियों और ध्यान को ब्रह्म या परमात्मा पर केंन्द्रित कर देता है।

अष्टांग योग का यह अंतिम आठवाँ सोपान है। समाधि को ध्यान की चरम सीमा कहा जाता है। जहाँ ध्यान की अवस्था में साधक को ध्यान, ध्येय वस्तु एवं ध्येय तीनों अलग-अलग प्रतीत होते है। वहाँ समाधिवस्था में पहुंचकर केवल ध्येय का अस्तित्व रहता है अर्थात् ध्यान, ध्याता, ध्येय तीनों मिलकर एकरूप हो जाते हैं।

समाधि, सम+धि से बना है। सम से अभिप्राय समत्व तथा धि का अर्थ है बुद्धि। अतः समाधि व्यक्ति की उस मानसिक अवस्था है जिसमें उसकी बुद्धि निर्मल, निष्काम तथा पापरहित होकर समत्व भाव वाली हो जाती है। व्यक्ति के मन में न तो कोई राग-द्वेष रहता है, उसका कोई शत्रु व मित्र भी नही होता। उस पर लाभ-हानि, यश-अपश आदि को कोई प्रभाव नही पड़ता। वह प्रत्येक परिस्थिति में समान व्यवहार करता है।

## समाधि के प्रकार

पंतजलि ने अपने योग शास्त्र में दो प्रकार की समाधियों का वर्णन किया है। जो कि निम्नलिखित हैं :-

1. संप्रज्ञात समाधि
2. असंप्रज्ञात समाधि

1. **संप्रज्ञात समाधि** :- जिस समाधि में ध्यान केन्द्रित करने के लिए किसी वस्तु विशेष की आवश्यकता होती है, उसे संप्रज्ञात समाधि कहते हैं। वस्तु विशेष पर ध्यान केन्द्रित करता हुआ व्यक्ति उसी में लीन हो जाता है। साधक को इस समाधि द्वारा उत्तम फल की प्राप्ति होती है और इसी फल प्राप्ति की लालसा मनुष्य को पुनः जन्म लेने पर विवश करती है।

संप्रज्ञात समाधि

सवितर्क

निर्वितर्क

सविचार

निर्विचार

1. **सवितर्क** :- इसी व्युत्पति दो मूलों से हुई है स+वितर्क, स का अर्थ है युक्त (के साथ) तथा वितर्क का अर्थ है विवेचन या तर्क।

यह वह समाधि है जिसमें स्थूल पदार्थो के स्थूल रूपों की स्थूल रूप में देखा जा सके। ध्याता ध्येय वस्तु कों ध्यान पूरी तरह सोच समझकर अपनी सभी मानसिक शक्तियों का प्रयोग करते हुए करते हैं।

2. **निर्वितर्क** :- वस्तु का बिना किसी तर्क किए हुए ध्यान करने मात्र से ही इस प्रकार की समाधि अवस्था को योगी प्राप्त हो जाते हैं।
3. **सविचार** :- इस समाधि में विचार और बुद्धि की प्रधानता रहती है। इसमें बुद्धि तत्व के द्वारा किसी पदार्थ के रंग, रूप आकार, प्रकार तथा उसके प्रयोजन आदि के बारे में निर्णय लेकर उसमें

ही लीन हो जाने का प्रयत्न करना ही सविचार समाधि कहलाती है।

4. **निर्विचार** :- समाधि की इस अवस्था में न तो अधिक विचार आते हैं और न कोई विशेष तर्क-वितर्क से साधक को गुजरना पड़ता है। इस समाधि में साधक की चित्त अवस्था बहुत ही निर्मल होती है।

2. **असंप्रज्ञात समाधि** :- इस समाधि में साधक को ध्यान लगाने के लिए वस्तु विशेष की आवश्यकता नहीं होती, उसी को असंप्रज्ञात समाधि कहते हैं। इसमें साधक पूर्ण रूप से बंधनों से मुक्त हो जाता है तथा उसे संसार में पुनः जन्म नही लेना पड़ता।

इसके दो रूप होते हैं :- क. आनंदानुगत समाधि
ख. अस्मितानुगत समाधि

**क. आनंदानुगत समाधि** :- इस प्रकार की समाधि में साधक परमात्मा के रूप, स्वरूप तथा अस्तित्व में लीन होकर परमानंद की अनुभूति करता है।

**ख. अस्मितानुगत समाधि** :- इस अवस्था में यह अनुभव होता है कि मैं स्वयं ब्रह्म हूँ। इस प्रकार का बोध करके आत्मा पूर्ण परमात्मा से ऐक्य स्थापित कर लेती है।

अतः असंप्रज्ञात समाधि की अवस्था में कुछ पाने या किसी फल प्राप्ति की इच्छा नही रहती। इस प्रकार की समाधि श्रद्धा, स्मृति और प्रज्ञा आदि उपायों द्वारा प्राप्त होती है।

## भारतीय दर्शन के सिद्धान्त

**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।**
**मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।**

**भावार्थ** : तुम्हें अपना कर्म (कर्तव्य) करने का अधिकार है, किन्तु कर्म के फलों के तुम अधिकारी नहीं हो। तुम न तो कभी अपने आपको अपने कर्मो के फलो का कारण मानो, न ही कर्म न करने में कभी आसक्त होओ।

1. **कर्म का सिद्धान्त** :- इसके अनुसार इंसान जैसा करता है वैसा ही उसे फल मिलता है। मनुष्य अपने जीवन में जैसे कर्म करता है उसके कर्मो के अनुसार उसे फल भोगना पड़ता है। भारतीय दर्शन में इस बात पर बल दिया गया है। कहा गया है कि जैसा करोगे वैसा भरोगे।

2. **पुनर्जन्म का सिद्धान्त** :- कर्म के सिद्धान्त की तरह पुनर्जन्म के सिद्धान्त में विश्वास रखते हैं। यह मानते हैं कि आत्मा अमर है। आत्मा कभी मरती नहीं वह एक शरीर को त्याग कर दूसरे शरीर में प्रवेश कर लेती है। शरीर नश्वर होता है। जिस प्रकार मनुष्य नए वस्त्र धारण करता है, उसी प्रकार आत्मा भी नए शरीर को धारण करती है। जब तक मानव की इच्छाएँ समाप्त नहीं होती हैं वह जन्म लेता रहता है, उसे मोक्ष की प्राप्ति नही होती है। मोक्ष प्राप्त करने पर ही वह मानव जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त हो पाता है।

3. **धर्म का सिद्धान्त** :- सभी भारतीय दर्शन इस बात को मानते हैं कि धर्म लौकिक है। ईश्वर के प्रति श्रद्धा भाव व संस्कृति के मूल आचारों का पालन करना ही धर्म है। धर्म के दस गुण बताए गए हैं। धर्म, क्षमा, मनोयोग, चोरी ने करना, पवित्रता, इंद्रिय निग्रह, बुद्धिमत्ता पूर्ण कार्य करना, विद्या प्राप्ति, सच बोलना और क्रोध न करना। धर्म के ये गुण मानव को सत्मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करते हैं।

4. **मोक्ष का सिद्धान्त** :- भारतीय दर्शनों में बताए गए चार पुरूषार्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) में मोक्ष अंतिम पुरूषार्थ है। यही मनुष्य के जीवन का परम लक्ष्य है। मोक्ष को निर्वाण, मुक्ति, आत्मदर्शन आदि कहकर भी पुकारा जाता है। योग मोक्ष प्राप्ति के महत्व पूर्ण भूमिका निभाता है। योग आत्म नियंत्रण करने का साधन है।

5. **संसार दुखों का घर है** :- सांसारिक मोह माया मनुष्य को जन्म-मरण के चक्कर में बांधे रखती है तथा मोक्ष प्राप्ति नही होने देती। इन्हीं कारणों से मानव जीवन में दुख की प्राप्ति होती है। इस संसार में मनुष्य को तीन प्रकार के दुखों को झेलना पड़ता है जो कि निम्नलिखित हैं।

क. आदिदैविक दुख
ख. आदिदैहिक दुख
ग. आदिभौतिक दुख

**क. आदिदैविक दुख** : दैवीय शक्तियों द्वारा आने वाली प्राकृतिक आपदाएँ, सर्दी-गर्मी, बाढ़, अकाल, ओले अतिवृष्टि आदि द्वारा इस प्रकार के दुंख प्राप्त होते हैं।

**ख. आदिदैहिक दुख** :- ये दुख शरीर से सम्बन्धित होते हैं जैसे विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ (मलेरिया, तपैदिक आदि) इसमें मनुष्य शारीरिक कष्टों से दुखी रहता है।

**ग. आदिभौतिक दुख** :- सांसारिक आवश्यकताओं को पूरा न होने पर मनुष्य को जो कष्ट होता है, उसे आदिभौतिक दुख कहते हैं। जिन व्यक्तियों की इच्छाएँ सीमित होती हैं उन्हें कम दुख होता है। जिन व्यक्तियों की इच्छाएँ असीमित होती हैं, उन्हें इस प्रकार का दुख अधिक होता है।

6. **वेद संपूर्ण ज्ञान के स्त्रोत हैं** :- भारतीय ज्ञान का प्रमुख स्त्रोत वेदों को माना जाता है। सृष्टि के प्रथम विकास काल में ही वेदों की रचना हुई थी। वेदों का अध्ययन कर मानव आध्यात्मिक विकास तक पहुंच सकता है। अतः मोक्ष प्राप्ति के लिए योग के साथ-साथ वेदों का अध्ययन आवश्यक है।

सभी भारतीय दर्शन उपर्युक्त छः सिद्धान्तों को मानते हैं।

**प्रश्न-13. ध्यान के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए।**

**Explain the various types of Dhayan (Concentration)**

**उत्तर - भूमिका**

योग साधना आठ चरणों से होकर गुजरती है, जिन्हें अष्टांगयोग कहा जाता है। 'ध्यान' अष्टांग योग का सातवाँ अंग है। इसके बिना कोई भी साधना सिद्ध नहीं हो सकती, क्योंकि ध्यान के पश्चात् ही समाधि की अवस्था उत्पन्न होती है। ध्यान की अवस्था में आकर ही साधक योगी कहलाता है।

**ध्यान का अर्थ** :- मन को सभी विषयों से हटाकर केवल एक ही बिन्दु पर एकाग्रचित करना ही ध्यान है। **"चित्त में आत्म तत्व का चिंतन ही ध्यान है।"** गोरक्ष संहिता में ध्यान के बारे में कहा गया है कि - "जो अपने चित्त में आत्म तत्व का चिंतन करे, उसका वह चिंतन ध्यान कहलाता है। **'स्मृ'** धातु से चिंतन शब्द बना जिससे चित्त शब्द बना। इसलिए चित्त में चिंतन करना ही ध्यान है।"

महर्षि पतंजलि ने ध्यान के विषय में कहा है- **"तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम्"** अर्थात् "जहाँ चित्त ... ध्यान है।" इस तथ्य को इस प्रकार स्पष्ट

उधर न भटकना, किसी अन्य विषय के सम्बन्ध में न सोचना ध्यान है।

हम कह सकते हैं कि जब योगी अपने शरीर, प्राण और मन पर संयम करके चित्त वृत्तियों को पूरी तरह नियंत्रित कर लेता है, इधर-उधर न भटकने की अपेक्षा अपने चित्त को एक स्थान पर केन्द्रित कर लेता है तब यही स्थिति ध्यान की कहलाती है। ध्यान की सीढ़ी तक पहुँचने के बाद ही योगी समाधि की अवस्था में पहुँच पाता है।

आरम्भिक अवस्था में ध्यान लगाने के लिए साधक को एक ध्येय की आवश्यकता पड़ती है जिस पर वह ध्यान को केन्द्रित करने का अभ्यास करता है क्योंकि ध्येय के बिना ध्यान की सिद्धि कदापि सम्भव नहीं। योग का अंतिम लक्ष्य ब्रह्म की प्राप्ति है, इसी को अपना ध्येय बनाकर ध्यान का अभ्यास करना चाहिए।

**ध्यान के प्रकार :-** ध्यान के तीन प्रकार होते हैं :-

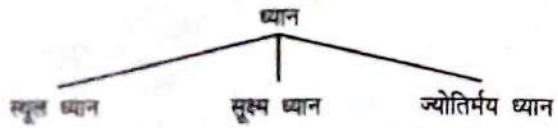


(i) **स्थूल ध्यान :-** स्थूल ध्यान, ध्यान लगाने का अभ्यास करने की प्रक्रिया में प्रथम सोपान है। जब कोई साधक ध्यान लगाना सीखता है तो आरम्भिक अवस्था में वह ध्यान के इसी रूप को अपनाता है। स्थूल ध्यान में साधक अपने ध्यान को किसी स्पष्ट रूप से दिखाई देने वाली वस्तु या चित्र पर केन्द्रित करता है। यह चित्र उसके ईष्ट देवी या देवता का भी हो सकता है। इस प्रकार स्थूल ध्यान की अवस्था में साधक को किसी बाह्य वस्तु पर ध्यान केन्द्रित करना होता है। वह सब कुछ भूल कर केवल उसी वस्तु अथवा चित्र पर अपने चित्त को एकाग्रित करने का प्रयास करता है। इसलिए यह विधि उनके लिए अधिक उपयोगी है जो ध्यान एकाग्र करना सीखना चाहते हैं। प्रायः सभी साधारण साधक इसी ध्यान के द्वारा अपने ईष्टदेव की उपासना करते हैं। इसे सगुण ध्यान भी कहा जाता है।

(ii) **सूक्ष्म ध्यान :-** सूक्ष्म ध्यान स्थूल ध्यान से कदाचित् भिन्न है। सूक्ष्म ध्यान की अवस्था में साधक अपना ध्यान किसी बाह्य वस्तु अथवा चित्र पर केन्द्रित नहीं करता बल्कि सूक्ष्म ध्यान में साधक अपना ध्यान अपनी भृकुटी (Eyebrow) के मध्य में केन्द्रित करता है इसमें साधक ईश्वर के निराकार रूप का ध्यान करता है, इसी से समाधि की प्राप्ति होती है। सूक्ष्म ध्यान में साधक बिन्दुमय ब्रह्म कुण्डलिनी शक्ति का चिंतन करता है। इसके लिए शांभवी मुद्रा का अभ्यास करने के लिए कहा जाता है।

(iii) **ज्योतिर्मय ध्यान :-** ज्योतिर्मय ध्यान समाधि के बिल्कुल निकट की या यह भी कहा जा सकता है कि समाधि की ही अवस्था है। इसमें योगी मूलाधार में कुंडलिनी शक्ति को योग-साधना द्वारा जागृत करने का प्रयास करता है। इसको जागृत करने के लिए योगी 'ज्योति स्वरूपा' ब्रह्म का ध्यान करता है। इसलिए यह ध्यान ज्योतिर्मय ध्यान कहलाता है। ओंकार रूप ईश्वर ध्यान एक तेजमय ज्योति के रूप में करना ही ज्योतिर्मय ध्यान है। योगाचार्यों का मत है कि स्थूल-से-स्थूल और सूक्ष्म-से-सूक्ष्म पदार्थों को ध्येय बनाकर कुछ समय तक निरंतर अभ्यास करते रहने से ही क्रमशः एक से दूसरे और दूसरे से तीसरे के ध्यान की प्राप्ति होती है। पूर्ण अभ्यास होने पर योगी अपने शरीर में ही सम्पूर्ण संसार





को देखने लगता है।

**भक्ति सागर के अनुसार ध्यान :-**

1. पदस्थ ध्यान
2. पिण्डस्थ ध्यान
3. रूपस्थ ध्यान
4. रूपातित ध्यान

1. **पदस्थ ध्यान :-** पदस्थ ध्यान में साधक अपने ईष्ट देवता की मूर्ति को आधार बनाकर अपने शरीर के अन्तःकरण में ध्यान लगाता है। ईष्ट देवता के चरणों में अपना ध्यान केन्द्रित करके कुम्भक प्राणायाम का अभ्यास करते हुए निरन्तर ओउम् का जाप करता है। जिससे उसका मन निष्कलंक हो जाता है और वह आदि दैहिक दैविक और आध्यात्मिक दुःखों से छुटकारा पाने का प्रयास करता है।

2. **पिण्डस्थ ध्यान :-** इस ध्यान में साधक शरीर में स्थित सभी चक्रों का ध्यान करते हुए ध्यान लगाता है। सबसे पहले वह मूलाधार चक्र पर अपना ध्यान अवस्थित करता है। इसके पश्चात् साधक अन्य चक्रों से होता हुआ अलौकिक ज्ञान की प्राप्ति करता है। एक ऐसी ज्योति जिसके द्वारा वह अपने पूर्व जन्मों का भी दर्शन कर लेता है। भक्ति सागर में इसको ध्यान की सर्वोत्तम विधि माना गया है।

3. **रूपस्थ ध्यान :-** रूपस्थ ध्यान में साधक अपने ध्यान को भ्रूमध्य में स्थिर करके अनेक प्रकार के दृश्यों का दर्शन करते हैं। सर्वप्रथम साधक अग्नि के समान पुंज का दर्शन करता है इसके पश्चात् वह दीपक और तारों का समूह देखता है। इस प्रकार दृश्य बदलते रहते हैं। साधक को चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश दिखाई देता है।

4. **रूपातित ध्यान :-** यह ध्यान सभी ध्यानों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। इस ध्यान में निराकार ब्रह्म का ध्यान किया जाता है, जो कि शंकराचार्य के 'अद्वैतवाद' से जुड़ा हुआ है। इसमें साधक के समक्ष कोई चित्र अथवा आकार नहीं होता। साधक ऐसे ब्रह्म में मन को लगाता है, जिसका कोई आकार नहीं अर्थात् शून्य है। इसमें साधक का मन एकाग्र होकर ब्रह्म में लीन हो जाता है। यह ध्यान की अन्तिम अवस्था होती है।

## ध्यान करने हेतु कुछ आवश्यक निर्देश

1. ध्यान के लिए स्थान शुद्ध एवं साफ हवा से युक्त होना चाहिए। एकान्त स्थान पर भी ध्यान करना चाहिए ताकि कोई बाधा ना पहुंचे। प्रत्येक दिन एक ही स्थान हो तो उत्तम होता है।
2. ध्यान करने से पूर्व हमें प्राणायाम अवश्य कर लेना चाहिए क्योंकि प्राणायाम से मन शान्त हो जाता है, और ध्यान के लिए मन का शान्त होना अति आवश्यक है।
3. ध्यान प्रतिदिन करना चाहिए, ध्यान के बीच में कभी भी अवकाश नहीं लेना चाहिए।
4. ध्यान के लिए सर्वोत्तम समय ब्रह्म मुहूर्त का होता है जिसको भारतीय शास्त्रों में प्रातः 4.00 बजे का होता है।
5. ध्यान के लिए हमें (तस्यवाचकः प्रणवः) अर्थात् उस परम् पिता परमात्मा का ही नाम लेना चाहिए।

इस प्रकार अंत में निष्कर्ष के रूप में हम यह कह सकते है कि ध्यान ही वह सीढ़ी है जिसे पार करके योगी न केवल समाधि की अवस्था को प्राप्त करता है, बल्कि कुंडलिनी शक्तियों को जागृत